विराम चिन्ह

'अंचल'

वाराणसी-१ ● कलकत्ता-७.

भूमिका

किसी विकसनशील भाषा के साहित्य की नैसर्गिक धारा ज्यों-ज्यों उच्छल गति से आगे बढ़ती है त्यों-त्यों विभिन्न दिशाओं से विभिन्न भावों और विचारों की लघ्वी और महती स्रोतस्विनियाँ मार्ग में आ-आकर उसका स्वागत करती हैं और वह धारा अपनी सहजा उदारता से उन्हें अपने अङ्क में समेटती आत्मलीन करती बिना रुके आगे बढ़ती जाती है । किसी भाषा के जीवन्त साहित्य के विकास की यही चिरन्तन कहानी है । संस्कृत वाङ्मयमें, अन्य वाङ्मयोंके विचार, विज्ञान और कला की ऐसी कोई भी शाखा नहीं है और न हो सकती है, जो न मिल जाय, इसका एकमात्र कारण उसकी ग्रहणशीलता ही रही है । वहाँ भी हम देखते हैं कि कुछ दिनों तक उसकी धारा में एकरूपता है, फिर उसका रूप शनैः शनैः बदल गया है । इस प्रकार उसमें अनेकानेक मोड़ हैं, वह कभी धीर और कभी त्वरित गति से कावे काटती काल की छाती पर अपनी अमिट पद-छाप छोड़ती चली आ रही है और हम मुड़कर देखते हैं तो उसका उद्‌गम कहीं अनन्त में विलीन दृष्टिगोचरातीत प्रतीत होता है । हिन्दी-साहित्य की धारा को हम एक ही दृष्टि में यहाँ से वहाँ तक देख लेते हैं, उसके विकास की धारा उतनी पुरानी नहीं है । फिर भी इतनी ही कालावधि में इसका बहुविध विकास चमत्कृत करनेवाला अवश्य है ।

हिन्दी में काव्य-विकास की कहानी बड़ी ही रोचक है । इसे रोचक बनाने में विराट् भारतीय वाङ्मय के अतिरिक्त समृद्ध विदेशीय साहित्य का उन्मुक्त योग-दान भी कम नहीं है । इस काल में अनेक महाकवि और कितने ही सामान्य कवि आ चुके, सबने अपनी-अपनी विशेषता के अनुरूप लोकाह्लादन किया और कर रहे हैं । इन्हें निकट से देखकर प्रत्येक सहृदय को हर्ष होगा, हिन्दी-प्रेमियों को गर्व का अनुभव होगा और तटस्थ द्रष्टा को चकित होना पड़ेगा । महाकवियों को देखकर बहुसंख्यक सामान्य जनता सिर झुका देती है,उनसे आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाती, किन्तु सामान्य कवि बहुतों के शीघ्र ही आत्मीय हो जाते हैं । सामान्य कवियों की त्वरित-प्राप्त प्रसिद्धि का यह रहस्य महाकवि वाक्पतिराज खोलते हैं:—

"बहुओ सामण्णमइत्तणेण ताणं परिग्गहे लोओ ।
कामं गया पसिद्धि सामण्ण कई अउच्चेय ।।"

अतः बहुत से महाकवि तो लोक की उपेक्षा करते देखे जाते हैं, किन्तु बहुतों को लोकाराधन की दृष्टि से सामान्य पथ भी ग्रहण करना पड़ता है। इस सामान्यता के भीतर महाकवि का वैशिष्टय भी छिपा रहता है, साधारण कवि दुर्निरीक्ष्य नहीं होता, पाठक को उसकी उक्ति के भीतर जाने के लिये कष्ट नहीं करना पड़ता। सुकवि अपनी सुगृहीत अनुभूतियों का दान करता है। आज के कवि-वर्ग में हमें ये दोनों ही प्रकार मिलते हैं।

खड़ी बोली की गौरवमयी छायावादी धारा की दूसरी पीढ़ी में आनेवाले विशिष्ट कवियों में श्रीरामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल' का सम्मान्य स्थान है। आपका कवि-व्यक्तित्व संकुचित सीमा में बँधा नहीं रहा। छायावाद और प्रगतिवाद दोनों ही क्षेत्रों में आपने यश अर्जन किया है। शुक्ल जी का 'विरामचिन्ह' नामक नूतन काव्य-संग्रह विविधवर्णी आलोक-रेखाओं से मण्डित है, एकाध स्थल देखिए। 'ज्योति तुम्हारी ही तो जलती' कविता में कवि का विश्वास आशा के दीपक को किस प्रकार ज्योतिर्मय बनाए हुए है, द्रष्टव्य है—

"ओ मेरे आलोक-देवता ! जब जब मन की बाती काँपी
छायाकुल अँधियारे ने जब जलती लौ की आभा टाँपी
बुझने का अछोर आमंत्रण लेकर आया पवन झकोरा
सचमुच ऐसा लगा किसी तूफानी ने आकर झकझोरा
नित विश्वास-वर्तिका मेरी रही थपेड़ों में ही पलती"

'नवयुग का दीप' कविता में युग-चेतना का परिचय इन उक्तियों में देखने को मिलता है—

"किस शोषणविहीन अनदेखी-सी समता का प्रबल तकाजा
उठा रहा घर-घर से सदियों की हिंसा का रुका जनाजा
गूँज रही जनगण के कानों में जाग्रति की अरुण प्रभाती
उगती चेतनता में विप्लव की चिनगारी उड़ती आती"

विश्वास है, युग-जागर्ति का कवि-सन्देश हिन्दी-जगत् में स्वागन्तव्य सिद्ध होगा और कवि की प्रतिभा समादृत होगी।

वैद्यनाथ-धाम, काशी
पौष शुक्ला २, २०१४ वि० } लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

अनुक्रम

—:०:—

विराम-चिन्ह

झरना

है दूर महासागर मेरा अज्ञात लिये जाता कोई

⊛

संघर्ष तरंगें करती हैं, सीने में बज उठती उलझन
गति फूटी पड़ती कण-कण में जब आज फटा पड़ता जीवन
जब भर-भर जाती हो पुरवा बादल की छाती का विप्लव
जब आ-आ कर टकराती हो प्राणों में दुर्दिन की धड़कन
उन्मत्त किये देती धारा आशीस अमावस लाई हो
विद्रोही प्राणों की हलचल कब तक चुपचाप सहे कोई
है दूर महासागर मेरा अज्ञात लिये जाता कोई

⊛

उस पार दिगन्तर से आई संकल्पभरी गति की वाणी
इंगित पर लहराते जिसके तूफान बवंडर अभिमानी
यह माना—बहती है उनमें यौवन की बिजली की धारा
पर अपने उद्गारों की तृष्णा भी तो मेरी पहचानी
मैं आज रुकूँ भी तो कैसे जब ओझल कूल बहे जाते
संघातों के संगी साथी विहगों की ममता भी रोई
है दूर महासागर मेरा अज्ञात लिये जाता कोई

⊛

क्यों आज अचीन्हें की आशा प्यासे प्राणों में बल भरती
झंकार उमर के तारों की कुछ मंजिल और निकट करती
क्यों स्वप्न अलक्ष्य अतल के ले आता है गृहहीन पवन
है आज न मस्ता की सीमा नीला अम्बर नीली धरती
मैं नीले सागर का राही, है नील निशा साथिन मेरी
है जाग उठी जैसे जन्मों-जन्मों की व्याकुलता सोई
है दूर महासागर मेरा अज्ञात लिये जाता कोई

⊛

ओ जाग्रत प्राण ! कहाँ का पागलपन है आ आकर घेरे
आदेश उमंगों का आता पावन मेरे ! प्रेमी मेरे !

ओ बंधन में बसनेवालों ! मैं तुमको कैसा लगता हूं
सुख कितना लुटलुट जाने में जब जीवन-जीवन को टेरे
वह भी क्या दिन था जब मन ने बरबादी का पैगाम सुना
वह यौवन भी कैसा जिसने चेतनता से वहशत खोई
है दूर महासागर मेरा अज्ञात लिये जाता कोई

काफी है एक यही सपना दिनरात बनाने को पागल
बस एक मिलन की अभिलाषा करती रहती प्रतिक्षण चंचल
मैं मुक्त तरंगित तालों पर गा गाकर हूं नाचा करता
मैं इसीलिये तो गाता हूं गुंजित हों सूने शैल अचल
है दूर विसर्जन-लग्न अभी उन्मादी पर्व नहीं आया
अभिशाप निराले प्रेमी के समझा वरदान करे कोई
है दूर महासागर मेरा अज्ञात लिये जाता कोई

खेल यह कैसा तुम्हारा ?

खेल यह कैसा तुम्हारा ?
जन्म-जन्मों के अमोही ! खेल यह कैसा तुम्हारा ?

दे अकल्पित प्रीति पहले तो मुझे जी से लगाया
स्वप्न इतने दे दिए मैंने न जिनका अन्त पाया
तृप्ति की पहचान देकर दे दिए अगणित प्रलोभन
बन गया मैं छाँह-सा अनुगत मुझे इतना रिझाया
यदि बुझाना था मुझे तो क्यों अँधेरे से उबारा ?

लौटने की राह खोकर दिग्भ्रमित था मैं अभागा
था अवश इतना कि तुमसे भी कभी तो कुछ न माँगा
मूक थी मेरी व्यथा तुमने दिए उसको नए स्वर
दी जलन इतनी कि फिर से जल उठा मेरा बसा घर
एक झपकी ही लगी थी, किंतु दुर्दिन ने पुकारा !

दे दिया तुमको बनाकर प्राण का मैंने खिलौना
चाँद को छूने चला था मैं मरुस्थल और बौना
पर, पपीहे की रटन से है कभी मृगजल न बदला
सत्य आखिर सत्य ही है, हो भले सपना सुनहला
दे मुझे मँझधार हरदम दूर कर देते किनारा !

कह दिया इस शून्यता में भी न मन का धीर त्यागो
हो भले आकंठ तृष्णा, किंतु पानी भी न माँगो
चिर-प्रतीक्षा बन भले जाए मिलन की राह तेरी
पर न आँखों में झलकने दे कभी मन की अँधेरी
तोड़ देते हो क्षणों में ही जुड़े मन का सहारा !

क्यों मुझे देकर पुरानी जिंदगी का जेलखाना
कह दिया तुझको नया हो नित्य यह नाता पुराना
किंतु क्षणभर को न तुमने युग-युगों का भेद खोला
बोलकर जैसे अहर्निशि रह गया यह मन अबोला
बीतता जाता तरसते-ही-तरसते जन्म सारा !

हाथ-सा ऊपर उठाए व्योम ने जब-जब बुलाया
देख नीचे गर्त जब विश्वास मेरा डगमगाया
कह दिया ऊपर न उठना और नीचे भी न गिरना
ले अकम्पित मन तृषा के बादलों में तुम न घिरना
प्राण की बाजी लगाकर भी न मैं जीता, न हारा !
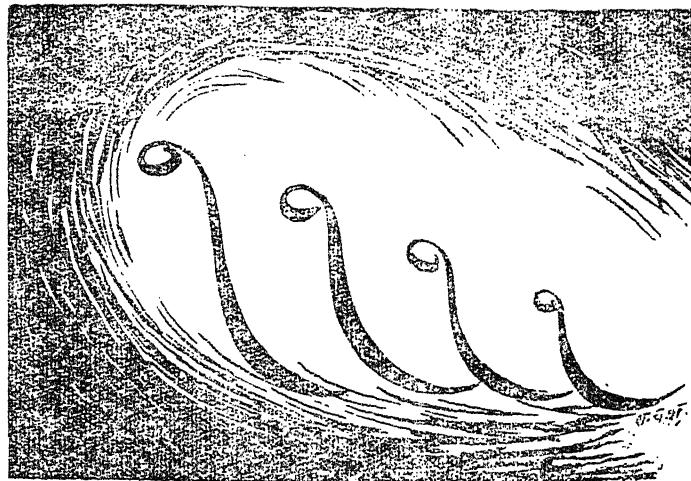
मत बुझना मेरे दीपक मन

रात अभी आधी बाकी है, मत बुझना मेरे दीपक मन।

(क)

चाह चाँदनी की मुरझायी, छिपा चाँद यौवन का तम में,
आयुरागिनी भी अकुलाती, रह-रह कर बिछुड़न के क्रम में।
जलते रहें स्नेह के क्षण ये, जब तक जीवन में अँधियारा।
तुम बुझने का नाम न लेना जबतक सम्मुख है ध्रुवतारा,
अपने को पी पीकर जीना है, हो कितना भी सूनापन।

(ख)

तमने विरहाकुल संध्या की भर दी मांग अरुणिमा देकर।
तम के घिरे बादलों को भी राह दिखायी तुमने जल कर।
तुम जाग्रत सपनों के साथी! स्तब्ध निशा को सोने देना।
धन्य हो रहा है मेरा विश्वास तुम्हीं से पूजित होकर,
जलती बाती मुक्ति कहाती दाह बना कब किसको बंधन?
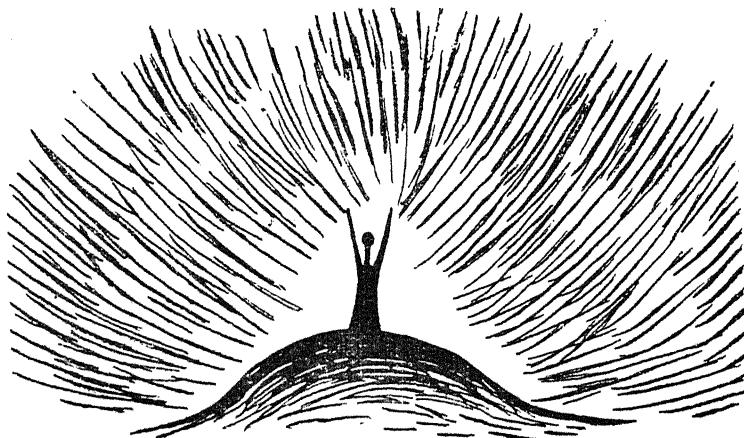
अपराजित सूर्य

यह काला बादल सूरज को कहाँ लिये जाता है !

दिशा दिशा बेचैन कि कैसा ज्वार उठा है ऊपर,
भय कातर प्रकाश की किरणें लटक गिरीं धरती पर,
नभ के मन में शांति नहीं है शांति नहीं है बाहर,
दिन की अर्थी देख रहे हैं चाँद सितारे छिपकर,
अरे दिवा स्वप्नों के स्वामी ! क्या होता जाता है !

उड़ा छाँह सा ताप तेज बन गया कालिमा गहरी,
मरघट सा बन गया गगन होते होते दोपहरी,
सृष्टि भरी है गहन व्यथा से धरती का दिल जलता,
त्यक्त केंचुली जैसा चारों ओर धुँधलका गलता,
हुए नदी के पाट अनमने जल भी अकुलाता है !

व्याप्त चतुर्दिक भय संशय के अनजाने अंधे स्वर
अंतिम पीली किरण पी गये ये तम के यामावर;
कफनाती है सान्ध्य धूलिमा जल, थल और गगन पर,
कैसा स्तब्ध प्रलय—कंपन भी भूल गया है थर-थर,
कोटर में भयभीत खगों का कंठ न खुल पाता है !

सूरज का यह हाल हुआ तो चन्दा का क्या होता,
काले प्रेतों ने उसको दफना कर छोड़ा होता,
पर डूबा सूरज संकट को चीर सदा चमकेगा,
काले बादल की छाती को फूँकेगा दमकेगा,
मेरी बात सुनो—युग-युग से यही चला आता है !

...ओ मेरे मन के अविनाशी !

मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी
मेरे पतझड़ के कूलों में उतरो सब दिन के मधुमासी
तुम ने मेरी उत्कंठा में यह कैसी मादक लौ धर दी
अकुलाये याद भरे मन में गीतों की तन्मयता भर दी
कब सीख भली विधि पाया था मैं प्राण जलाना तिल-तिल कर
कवि की सौन्दर्य-पिपासा तुमने पूजा में परिणत कर दी
इस मरु की धरती पर बरसो बरसो ओ मेरे आकाशी
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी

मैं ढूँढ़ रहा अपने दिल में बहती तृष्णा का छोर यहाँ
पहचान नहीं पाया अब तक खोये मन का विश्राम जहाँ
भटकी भटकी सी फिरती हैं ये कैसी बिछुड़न की छाँहें
प्यासी मेरी लघुता प्यासी—प्यासे जीवन का छोर कहाँ
मेरे अवशेषों में उतरो ओ उज्ज्वलता के अधिवासी
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी

मेरे संशय-संशय में तुम अपना संकल्प जगा जाते
सुख-दुख की इन अनुहारों को कितनी संगीन बना जाते
पूरी न अभी तक हो पाई अधगूंथी आँसू की माला
मेरे मन में उमड़े जल को क्यों इतना निष्फल कर जाते
मेरी जलधारों में गूंजो रस के जलधर अन्तर्वासी
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी

मेरी आसक्ति बने निष्ठा ममता अर्पित हो भक्ति बने
बिन जाने बिन अनुमाने जीवन की सीमा ही शक्ति बने
तुम पूर्ण अमरता में अपनी, है मुग्ध अधूरापन मेरा
मेरी चंचलता की उल्का तुम तक पहुंची अनुरक्ति बने
बँध जाओ मेरे सपने में ओ मेरे रागी सन्यासी
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी
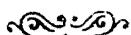
एक कण दे दो न मुझको !

एक कण दे दो न मुझको
तृप्ति की मधु मोहनी का एक कण दे दो न मुझको !
एक कण दे दो न मुझको

तुम गगन-भेदी शिखर हो मैं मरुस्थल का कगारा
फूट पाई पर नहीं मुझमें अभी तक प्राण धारा
जलवती होती दिशा में पा तुम्हारा ही इशारा
फूट कर रसदान देते सब तुम्हारा पा सहारा
गूँजती जीवन-रसाका एक तृण दे दो न मुझको !
एक कण दे दो न मुझको

जो नहीं तुमने दिया अब तक मुझे मैंने सहा सब
प्यास की तपती शिलाओं में जला, पर कुछ कहा कब
तृप्तिमें आकराठ उमड़ी डूबती थीं मृगशिरा जब
आग छाती में दबाये भी रहा मैं देवता ! तब
तुम पिपासाकी बुझनका एक क्षण दे दो न मुझको !
एक कण दे दो न मुझको

तुम मुझे देखो न देखो प्रेम की तो बात ही क्या
साँझकी बदली न अब मुझको मिलन की रात ही क्या
दान के तुम सिंधु मुझको हो भला यह ज्ञात ही क्या
दाहमें बोले न जो उसका तुम्हें प्रणिपात ही क्या
छाँहकी ममता भरी श्यामल शरण दे दो न मुझको !
एक कण दे दो न मुझको

ज्योति तुम्हारी ही तो जलती

मेरे स्नेह हीन दीपक में ज्योति तुम्हारी ही तो जलती
इन रेतीली आँखों में जलबून्द तुम्हारी ही तो गलती

(१)

तुम न कभी प्राणों में छाये तुम न कभी दिल में भी ठहरे
मन के मन में भी न दिखे तुम कैसे कितने भीतर गहरे
ओ मेरे आलोक देवता! जब-जब मन की बाती काँपी
छायाकुल अँधियारे ने जब जलती लौ की आभा टाँपी
बुझने का अछोर आमंत्रण लेकर आया पवन झकोरा
सचमुच ऐसा लगा किसी तूफानी ने आकर झकझोरा
नित विश्वास-वर्तिका मेरी रही थपेड़ों में ही पलती
मेरे स्नेहहीन दीपक में ज्योति तुम्हारी ही तो जलती

(२)

तृष्णा-सागर की लहरों ने शशि को छूने होड़ मचाई
उगे एक से अधिक चाँद तो सागर की गति-मति बौराई
घेर नहीं पाती चाँदों को बादल की सारी अँधियाली
रोक नहीं पाती पूनों को अगणित तारों की रखवाली
वैसे ही हर लिया तुम्हींने मेरे जीवन का तम सारा
पास बुला लाया किरणों को प्यार भरा संकेत तुम्हारा
तुमको और निकट पाने को जीवन की हर सांस मचलती
मेरे स्नेहहीन दीपक में ज्योति तुम्हारी ही तो जलती

(३)

दूर हो गई जीवन को सब दूरी फैली थी जो बाहर
दिखने लगी चरण की रेखा जागा जीवन जिसको छूकर
केवल छूना ही संभव है धोने का वरदान न मुझको
संभव केवल मन की निष्ठा, चरणों का मधुपान न मुझको
तुमने क्या कर दिया कि जैसे मेरी नींद सदा को जागी
मेरे मरे स्वप्न ने तुमसे और अवधि जीने की माँगी
अनायास सब हुआ, तुम्हीं में मेरी बुझी साधना फलती
मेरे स्नेहहीन दीपक में ज्योति तुम्हारी ही तो जलती
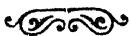
पुकार

तुमने कहीं पुकारा !
रोम-रोम जैसे ध्वनि पीता गूँज उठा तन सारा
तुमने कहीं पुकारा !

यह आवाज पिघलते शीसे-सी कानों में आती
चाख गगन-मण्डल में बिजली बेपरदा हो जाती
रात अन्धेरी जैसे प्राणों में जगती व्याकुलता
अणु-अणु बन चीत्कार अमावस के प्रदीप-सा जलता

दूर खड़ी संध्या-सी होकर तुमने कहीं पुकारा
तुमने कहीं पुकारा !

किसके जीवन के तट की तुम लहर भरी रँगरेली
एकाकी विरही की पलकें भरने चलीं अकेली
जड़ीभूत अंगों में कैसी गहन व्यथा भर आती
जग में कितना एकाकी मैं मेरी प्यास न जाती

है विधना की भूल तुम्हारे भरे कण्ठ की धारा
तुमने कहां पुकारा !

उतना तुम पर विश्वास बढ़ा

जितनी तुम ने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा !

(१)

बाहर के आँधी-पानी से मन के तूफान कहीं बढ़कर,
बाहर के सब अघातों से, मन के अवसान कहीं बढ़कर,
फिर भी मेरे मरते मन ने तुम तक उड़ने की गति चाही,
तुमने अपनी लौ से मेरे सपनों की चंचलता दाही,
इस अनदेखी लौ ने मेरी बुझती पूजा में रूप मढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा ।

(२)

प्राणों में घुमड़ी थी कितने अनगाये गीतों की हलचल,
जो बह न सके थे वे आँसू भीतर-भीतर थे तप्त निकल,
रुकते रुकते ही सीख गये वे सुधि के सुमिरन में बहना,
तुम जान सकोगे क्या न कभी मेरे अर्पित मन का सहना,
तुमने सब दिन असफलता दी मैंने उसमें वरदान पढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा !

(३)

मैंने चाहा तुममें लय हो साँसों के स्वर सा खो जाना,
मैं प्रतिक्षण तुम में ही बीतूँ—हो पूर्ण समर्पण का बाना,
तुमने क्या जाने क्या करके मुझको भवरों में भरमाया,
मैंने अगणित मंझधारों में तुमको साकार खड़ा पाया,
भयकारी लहरों में भी तो तुम तक आने का चाव चढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा !

(४)

मेरे मन को आधार यही, यह सब कुछ तुम हो देते हो,
दुख में तन्मयता देकर तुम सुख की मदिरा हर लेते हो,
मैंने सारे अभिमान तजे लेकिन न तुम्हारा गर्व गया,
संचार तुम्हारी करुणा का मेरे मन में है नित्य नया,
मैंने इतनी दूरी में भी तुम तक आने का स्वप्न गढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा !

(५)

मुझको न मिलन की आशा है अनुमान तुम्हें मैं कितना लूँ,
मन में बस एक पिपासा है पहचान तुम्हें मैं कितना लूँ,
जो साध न पूरी हो पाई उसमें ही तुम मँडराते हो,
जो दीप न अब तक जल पाया उसमें तुम स्नेह सजाते हो,
तुम जितनी दूर रहे तुम पर उतना जीवन का फूल चढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा !

(६)

आभास तुम्हारी महिमा का कर देता है पूजा मुश्किल,
परिपूर्ण तुम्हारी वत्सलता करती मन की निष्ठा मुश्किल,
मैं सब कुछ तुममें ही देखूँ-सब कुछ तुमसे ही हो अनुभव,
मेरा दुर्बल मन किन्तु कहाँ होने देता यह सुख सम्भव,
जितनी तन की धरती डूबी उतना मन का आकाश बढ़ा !
जितनी तमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा !

...........प्राण थके रोये

कब तक देखें राह तुम्हारी प्राण थके रोये !

मेरे वज्र-हृदय को तुम जी भर आघात सहा दो,
जड़ता में अवरुद्ध पड़े अन्तर का स्रोत बहा दो;
कैसे शान्ति मिले जब तक मरु से जलधार न फूटे,
कैसे सत्य मिले जब तक सपने का मोह न टूटे;

जागे मेरे मन में जनम-जनम से जो सोये,
कब तक देखें राह तुम्हारी प्राण थके रोये !

मत जुड़ने दो भग्न हृदय जो तुमसे ही टूटा,
मत मिलने दो वह जो तुमसे बिछुड़ गया छूटा;
हो अप्राप्य वह सब मुझको जो तुमसे आज मना,
केवल होता रहे सदा तुम पर विश्वास घना;

विलग हुए कब मुझसे जो तुम में जा खोये,
कब तक देखें राह तुम्हारी प्राण थके रोये !

ले लो सब तृष्णायें जो तुम तक न पहुंच पाईं,
ले लो असफलतायें जो अपने में अकुलाईं;
बुझ जाने दो दीप-शिखा जो तुमसे नहीं जली,
झूठी मेरी तन्मयता जो तुममें नहीं फली;

दो मुझको सन्ताप नये जो तुमसे ही धोये,
कब तक देखें राह तुम्हारी प्राण थके रोये !

दूर करो दुख के भय को सुख का अभिमान हरो,
मेरी सुधि-सुधि में अपने सुमिरन की गूँज भरो;
मेरे संशय-संशय में जय घोष तुम्हारा हो,
मेरी अनियन्त्रित गति में सन्तोष तुम्हारा हो;

कब तक मेरा मन अपने को मरु भूमि पर बोये !
कब तक देखें राह तुम्हारी प्राण थके रोये !

ऐसी मेरी मति मारी

पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी
मेरे पग पीछे जाते हैं ऐसी मेरी गति हारी

(१)

तुम से सदा छिपाता आया मैं जीवन की कमजोरी
तुम्हें नहीं संचित कर पाई मेरी चंचलता भोरी
सदा बटोरे फिरा हृदय में मैं प्रमाद की अस्थिरता
मेरे भीतर सदा रहा सन्देहों का बादल घिरता
डसती रहीं मुझे रह रह अपनी असफलतायें सारी
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

(२)

मान लिया तुम जीत गये हो मैं अपनेपन से हारा
बिना उगे ही डूब गया मुझमें मेरा जीवन तारा
फिर भी मैं इतने अवरोधों में एकाकी खड़ा रहा
रवि से बिछुड़ी धूप सरीखा मैं कुम्हलाया पड़ा रहा
सहा न जाता तेज तुम्हारा मुझ से मेरे अवतारी !
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

(३)

डिगती रही कामना मेरी रह न सका विश्वास अचल
तुम तक पहुंच नहीं पाता है मेरे प्राणों का संबल
तुमने अपना स्नेह भरा पर जल न सका मेरा अन्तर
कभी समर्पण के दीपक में ज्योति नहीं जागी पल भर
कभी न सपने में भी मुझ से छूटी मेरी अंधियारी
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

(४)

मेरे द्वन्द्वों को निर्मित कर तुम ही हो उनको सहते
मेरी खंडित तृष्णाओं से तुम्हीं तरसने को कहते
मेरी टूटी तन्मयता को क्यों तुम जोड़ नहीं देते
क्यों तुम मरु में जकड़ी जलधारा को छोड़ नहीं देते
मेरा बहना रोके हैं छलना की चट्टानें भारी
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

(५)

नहीं चाहता अपने मन को मेरे मन में लय कर लो
नहीं चाहता मैं तुम क्षुद्र पतित को महिमामय कर लो
शेष भले हो अभी बहुत अभिलाषा में धोखा खाना
पन्थ भले दुर्गम हो अतिशय और भले हो अनजाना
सदा भटकती रहे नियति बनकर मेरी ही लाचारी
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

कलाकारकी बिक्री—

१
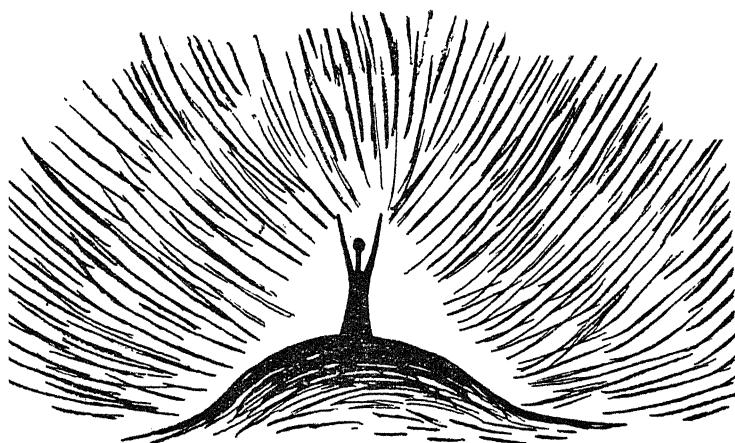
आज अभावोंमें दाताके आगे झोली है फैलाई।
आज गरीबी ने आ-आकर धनको अपनी भीख सुनाई।
जीवनभर था ऊँचा मस्तक ऊँची चितवन थी अभिमानी!
मेरे मनके गौरवने थी अब तक जगसे हार न मानी।
अब तक मेरे आदर्शोंका स्वप्न न बिलकुल था मुरझाया।
आज अकम्पित पौरुष मेरा धनके आगे बिकने आया॥

२

मैंने अपने विश्वासोंके बलपर सबसे लड़ी लड़ाई।
चाह नहीं थी मुझको सुखकी कभी न मैंने आँख गड़ाई!
था संकल्पोंकी आशासे जगमग मेरा हारा जीवन!
शक्ति किसी ने वह दे दी थी शंकित होता था न कभी मन।
था अभिशापोंमें भी अविजित मेरा अंतर सुखमें डूबा!
संतापोंके जलते मरुमें मैं न कभी क्षण भरको ऊबा॥

३

तुम क्या समझोगे उसका दुख उसके जलते मनकी ज्वाला।
जिसकी उड़ती ज्योति-शिखाका विष पीकर मर गया उजाला।
वह विश्वास-सृजनकी पीड़ा झेल जिसे कविने था पाया।
जीवनभर संघर्षोंमें भी पाला जिसका गीत सुनाया।
आज उसीकी अरथी सजती प्राण न जैसे धीरज धरता।
उल्का बनकर देख रही है माँ इकलौता बेटा मरता॥

मत टूटो
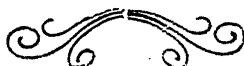
मत टूटो ओ मेरे जीवन के संचित सपने मत टूटो
तुमने ही मेरे प्राणों को जलने की रीति सिखाई है;
तुममें ही मेरे गीतों ने विश्वासमयी गति पाई है,
मेरे डूबे-डूबे मन का तुम ही तो ठौर ठिकाना हो
मेरी आवारा आँखों ने तुमसे ही लगन लगाई है
काँटों से भरी विफलता में आधार न जीने का लूटो
मत टूटो ओ मेरे जीवन के संचित सपने मत टूटो !

तुमको मनुहारा करती हैं ये दर्दीली प्यासें मेरी
तुम तक न पहुंच क्या पाती हैं उत्पीड़ित अभिलाषें मेरी
मेरी संतप्त पुकारें तुमको अब तक पूज नहीं पाईं
मेरी नश्वरता को क्या जीवन दे न सकीं साँसें मेरी
तुम रीते-रीते ही बीतो मेरे सुख के घट मत फूटो
मत टूटो ओ मेरे जीवन के संचित सपने मत टूटो

जीवन भर मैं पथ में भटका तुमने मुझको खोने न दिया
अर्पण में भी असमर्थ रहा लेकिन तुमने रोने न दिया
मन में जैसी उत्कंठा थी वैसा तो जाग नहीं पाया
लेकिन तुमने क्षण-भर मुझको अपना होकर सोने न दिया
मत मंत्रित मन का दीप बुझा अन्धियारी रजनी में छूटो
मत टूटो ओ मेरे जीवन के संचित सपने मत टूटो ।

नभ में उग आया शुक्र नया जीवन की आधी रात ढली
सब दिन सुखदुख में होड़ रही सब दिन पीड़ा में प्रीत पली
उतरी माला-सी सकुचाई मेरी ममता छाया-छल में
इस मध्य निशा में भोर छिपा इसमें किरणों की बंद गली
कल्पित रस जो भर घूँट चुके अब जीवन के विष भी घूँटो
मत टूटो ओ मेरे जीवन के संचित सपने मत टूटो ।
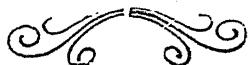
नभ के तारे की क्या आशा !

अब घर ही का दीप बुझ गया, नभ के तारे की क्या आशा ?
डूब गई अब जीवन-नौका, दूर किनारे की क्या आशा ?

(१)

बिछुड़ सदा को गया, रहा जो हरदम इतना बड़ा समीपी ;
कब-कब सुनी गगन ने तृष्णा में जलते चातक की 'पी-पी' !
बिछुड़ सदा को गया, रहा जो अन्तर में आलोक जगाए ,
सूख सदा को गया, सुरभि में जिसके प्राण घिरे, मँडराए ;
मेरे ऊपर सिमटी आतीं घने अँधेरे की दीवारें ,
शेष निराशा है काजल की घुटते मन की मूक पुकारें ;
अपना ही अपना न हुआ, आकाश-विहारी की क्या आशा !
जब मन ही का फूल मर गया, क्या आकाश-कुसुम की आशा !

(२)

कैसे देगा साथ, चमकता है जो इतने ऊपर, बाहर ;
कैसे प्यार करेगा मुझको, जो सुन्दरता से भी सुन्दर !
कैसे ताप हरेगा, जो आवाज नहीं दिल की सुन पाता ;
कैसे ज्योति भरेगा, अपना स्नेह न जो नीचे ढुलकाता !
कैसे अपने देश बसेगा, जो सपनों का बना विदेशी ;
कैसे स्वप्न-लोक से नीचे उतरेगा किरणों का वेशी !
जब अपना ही गीत मर गया, नभ के गीतों की क्या आशा !
जब अपना ही मीत हर गया, नभ के मीतों की क्या आशा !

(३)

सचमुच बड़े छली हैं, ये तो केवल प्यास बाँटना जानें ;
नये नशीले चाँद भला ये कब धरती का मन पहचानें !
इनकी चितवन में मदिरा है, इनके प्राण बड़े निर्मोही ;
ये केवल देखा करते हैं अपनी छवि को अपने को ही !
इस आकाशी ज्योति-शिखा का कौन भरोसा, कौन सहारा ;
जब घर ही का दीप मर गया असमय असफलता का मारा !
अब घर ही का दीप बुझ गया, नभ के तारे की क्या आशा !
डूब गई अब जीवन-नौका, दूर किनारे की क्या आशा !
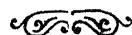
मांगे भी नहीं मिलते

हमें तो स्नेह के दो बूंद मांगें भी नहीं मिलते
पड़े हैं स्वप्न जैसे रात के वीरान साये हों
पड़े अरमान जैसे अब हमेशा को पराये हों
अँधेरा इस कदर छाया कि भय के मेघ छाये हों
किसी के स्नेह के दो बूंद मांगें भी नहीं मिलते
न पूरा मीत होता है न मन का मीत मिलता है
जकड़ ले प्राण प्राणों से न वह मनजीत मिलता है
विकल है बूंद स्वाती की न कोई सीप मिलता है
हमें तो स्नेह के दो बोल मांगें भी नहीं मिलते
घिरी आती चतुर्दिक अधबुझी तृष्णा बुझे मन की
सिसकती, गूंजती, कुचली गयी जो प्यास जीवन की
सदा को छा गई हर सांस में आवाज बिछुड़न की
हमें तो स्नेह के दो बूंद मांगें भी नहीं मिलते !
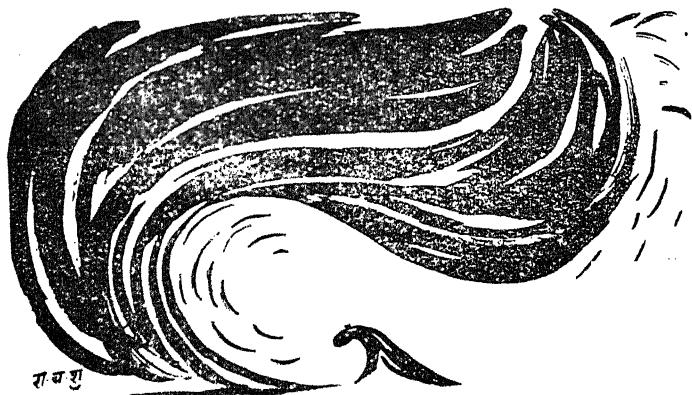
तीन बातें

तुम तो मेरा मन देखो मेरे बंधन मत देखो

(१)

शीतल हुई तुम्हीं से कह कर मेरी जलन कहानी
तुम्हें जान पाया जिस क्षण से मेरी तपन सिरानी
मुझे भला क्या मिला जिन्दगी में जो तुमको दे दूं
यही समझ लो चुकी जा रही कब की व्यथा पुरानी
जंजीरों में जकड़ी मेरी गति को अकुलाने दो
तुम तो मेरा मन देखो मेरी जकड़न मत देखो

मुझे मूकता में घुटने दो आज तुम्हीं कुछ गाओ

(२)

ये सुदूर की थकी हवायें सुनें जुड़ावन बोली
नभ के सदा कुँआरे बादल सुनें कड़ी अनमोली
छलक उठे यदि होंठ की जलभरी उमंग, न रोको
मेरी बौरी मति को पीने दो चैती मधु घोली
प्यास बुझाना नहीं भींगना केवल चाह रहा मैं
कौन उमस मेटे जीवन की आज तुम्हीं कुछ गाओ

मुझे बुलाने दो जीवन भर तुम तो कभी न बोलो

(३)

रोम रोम के द्वार खोल निकलें सब आर्त पुकारें
तुम तक भले पहुंच ही जायें मुग्धमना मनुहारें
केवल एक उचटती ऊनी नजर उन्हें दे देना
जनम-जनम के धुन्ध इसी विधि तुमने सदा उबारे
मेरे सूखे अक्षर-अक्षर में चाहे बस जाओ
मेरे छवि में अटके प्राणों के दल कभी न खोलो

सचमुच कितना अच्छा होता !

सदा अपरिचित ही हम रह जाते कितना अच्छा होता।
जीवन पथ पर कभी न मिल पाते कितना अच्छा होता॥

कितना मोह बढ़ाया श्रो सपनों पर छा जाने वाले।
मन की मिटती श्राशा पर बादल से मँडराने वाले॥
बूँद-बूँद विश्वास जमा कर मन को रसमय कर डाला।
मेरी आकुलता ने फिर से एक नया सपना पाला॥
कितनी जल्दी वह दिन आया जिसकी रात नहीं होती।
अनदेखे सुख के महलों की आगे बात नहीं होती॥
ऐसे महल न बन पाते सचमुच कितना अच्छा होता।
बिना बने ही ढह जाते सचमुच कितना श्रच्छा होता॥

मन की दिशा-दिशा को तुमने सुख की नई किरण दे दी।
संशय-दुविधा भरे पथिक को तुमने बड़ी शरण दे दी॥
क्षण भर को ही दूर हुई चलने की दूभर लाचारी।
राही ने हर ली राही के श्रागे की सब अँधियारी॥
मन के तारों को छूकर सहसा ही लौट गई बेला।
बिन सोचे बिन जाने जैसे खेल अनागत ने खेला॥
भेंट अनहुई रह जाती सचमुच कितना अच्छा होता।
प्रीति श्रनकही रह जाती सचमुच कितना अच्छा होता॥

छोड़ एक सा स्वाद जलन का टूटा किस्मत का तारा।
बुझते ही फुलझड़ी मिलन की पथ पर ठिठका बंजारा॥
किसी फूल की भूली भटकी गन्ध बनी मुस्कान नई।
जगी न मेरे मन की कोयल मूक हो गई तान नई॥
मैं तुमसे कुछ बोल न पाया टूटा मेरे स्वर का दम।
अब एकाकी के एकाकी मेरे प्राण रहे हर दम॥
मैं न पहनता इन गीतों की कड़ियाँ कितना श्रच्छा होता।
मैं न गूँथता मुस्कानों की लड़ियाँ कितना श्रच्छा होता॥

जानबूझ कर नहीं जानते हो तुम मेरे मन की भाषा ।
ठीक तुम्हारे आगे मुझको मिल गई है घनी निराशा ॥
कभी न आता और न जाता यह कैसा संचार तुम्हारा ।
मुझे लय किए था पहले भी ममतावाही मौन तुम्हारा ॥
पड़ा अधबना नीड़ कल्पना का तुम मुझको छोड़े जाते ।
कैसे पथ के राही तुम उम्मीद सफ़र की तोड़े जाते ॥
सदा अपरिचित ही हम रह जाते कितना अच्छा होता ।
जीवन पथ पर कभी न मिल पाते कितना अच्छा होता ॥

चाँदनी

चाँदनी में आज केवल चाँदकी बातें करो !

प्रेमके इस राजपथपर मिल गये हम आज फिर
उग रहे आकाशको भरते हुए तारक शिशिर
आज ओ मधुवर्षिणी ! आये दृगोंमें स्वप्न तिर
चाँदनी में आज केवल चाँदकी बातें करो !

लग रही कटि की तुम्हारी किंकिणी जलधार-सी
कंकणोंसे उठ रही है मन्त्रिता झनकार-सी
कनक बेसरके नगोंकी ज्योति पारावार-सी
चाँदनी में आज केवल चाँदकी बातें करो !

हैं चमकते संगमरमर-से तुम्हारे अंग खुल
हों गुंथे ज्यों कुन्तलों में मोतिया मोती मुकुल
है तुम्हारे रूपका साम्राज्य यह अम्बर विपुल
चाँदनी में आज केवल चाँदकी बातें करो !

बँध गया सौन्दर्य चितवन में तुम्हरी जग मगर
आज तुम जो भी कहो संगीत-सा होगा मधुर
नभ पड़ा घनसार का उज्ज्वल चँदोवा तानकर
चाँदनी में आज केवल चाँदकी बातें करो !

खुले शिशिर की श्याम घटा

तुमसे कितनी मिलती-जुलती खुले शिशिर की श्याम घटा ।
तुम सी नहीं बरसती मुझ पर यह जल की अविराम घटा ॥
कच्ची धूप तनिक सी निकले तो शरमा-शरमा जाए ।
उड़ते विहगों की टोली में ठिठके और लजा जाए ॥
सहसा हवा चले तो खुशबू से खेले बाहें खोले ।
दूर देस की लहर उठे तो सकुची बौराई डोले ॥
गोरे सपनों की जैसे हो नीली-नीली घनी लड़ी ।
तुम्हें देखता ही रह जाऊँ मेरी तृष्णा बहुत बड़ी ॥
पवन परस से मुँह पर आ जाती मेंघिल अभिराम लटा ।
तुमसे कितनी मिलती-जुलती खुले शिशिर की श्याम घटा ॥
थमी हुई आलोक-लहरियाँ तुमको छूकर खुल जातीं ।
मुँह पर बन्दनवार सजातीं मोती और मुकुल लातीं ॥
मुंदी गगन की पलकें भींगे तारों की चितवन लेकर ।
रँगे साँवरे द्वार नयन के तुमने कब खोले पल भर ॥
सिक्त नीलिमा के शिखरों से वह न कभी नीचे उतरी ।
तुमने मुझको कब पहचाना तुमने मेरी आश हरी ॥
सदा कुँआरी नीले सीपों की घाटी की नई छटा ।
तुमसे कितनी मिलती-जुलती खुले शिशिर की श्याम घटा ॥
वर्षा बीती शरद सो गया जागीं तुहिनों की परियाँ ।
जागी नई भव्यता तुम में और नई सुषमावलियाँ ॥
तुम-सी दूर-दूर रहती है यह मदमाती मानवती ।
केवल मुग्ध पुलक की सिहरन को दाबे रहती हँसती ॥
कच्चे रंगों-सा धुल-धुल कर बह जाता मन का मर्मर ।
दुर्बल मेरे पंख तुम्हारा ऊँचा कितना रूप-शिखर ॥
तुम-सी नहीं सोचती यह चातक ने कितना नाम रटा ।
तुमसे कितनी मिलती-जुलती खुले शिशिर की श्याम घटा ॥

परदेशी सौरभ चला गया

चैत गया, तो मधु-ऋतु का परदेशी सौरभ चला गया ;
फिर वसन्त का छलिया सौरभ चैत गया तो चला गया ।

विटपी-विटपी बंधा पड़ी रह गई मोह के पाश में;
यही प्रीति की रीति, गया जो, सुधि उसकी हर साँसमें ।
दो दिन का था चाँद, सजी दो दिन सपनों की चाँदनी;
कहाँ उड़ा ले गया पवन रस की बहार की रागिनी ।

कोयल के चुप होते ही मधुपों का गुञ्जन चला गया;
चैत गया तो मधु-लोभी विहगों का नर्तन चला गया ।
सूने तरुओं की छाया में पत्ते खड़े उदास-से;
देख रही डूबी हरियाली शैल-वनों को प्यास से !

खेतों के नीले, कजरारे घाट खड़े उन्मन-उन्मन;
नई-नई फसलों के गीले हुए विषादाकुल लोचन ।
डाली-डाली पर रीझा निर्मोही सौरभ चला गया;
चैत गया, तो बनजारा परदेशी सौरभ चला गया ।

पूरी बाजी लगी कहाँ !

जीत-हार का बात अभी क्या, पूरी बाजी लगी कहाँ !
तृप्ति-प्यास की बात अभी क्या, पूरी तृष्णा जगी कहाँ !

कौन सहारा है प्यासे को मरु के मृग-जल से बढ़कर;
कैसे कण्ठ थकेगा, कैसे स्वर पथरायँगे ढलकर ?
कितने गान बचे हैं, जिनके बोल नहीं अब तक टूटे;
कितने स्वप्न पड़े हैं, जिनके पङ्ख नहीं अब तक फूटे ?
अभी तपन का अन्त कहाँ, जो चौमासे की आस करें;
कैसे इतनी रात रहे किरणों का विफल प्रयास करें ?
लौट-लौट आ ही जाती है, जी की शंका भगी कहाँ;
जीत-हार की बात अभी क्या, पूरी बाजी लगी कहाँ !

कुचले जीवन का सारा उत्सर्ग न सञ्चित हो पाया,
उमड़-भरे सागर का सारा ज्वार न सञ्चित हो पाया।
मन की सारी शक्ति अभी तो भींगी-भींगी कुहराई;
कब सर्वस्व-समर्पण की ज्वाला मुझमें जलने पाई !
कहाँ किनारा जब दो पाटों में छाई इतनी दूरी;
प्रगति नहीं है—मुझसे आगे चलती मेरी मजबूरी।
हो तन-मन आलोकित, ऐसी प्राणों में जगमगी कहाँ;
जीत-हार की बात अभी क्या, पूरी बाजी लगी कहाँ !

पूरी बाजी तभी कि जब मन का विश्वास न काँपे;
भीतर-बाहर की चिन्ता मन का सङ्कल्प न ढाँपे।
क्या है जीत—न हार माननेवाली एक पराजय;
क्या है तृप्ति—अमर नश्वरता पर अभिलाषा की जय ;
पास पहुँचकर फिर उतनी ही दूर चली जो जाती;
मेरी लगन न पूरी होती और न मिटने पाती।
श्रमित पथिक की साँझ अभी काली रातों में रँगी कहाँ;
जीत-हार की बात अभी क्या पूरी बाजी लगी कहाँ !

कब किससे ?

कब किससे मन मिल जाता है
आँखों के मिलने के पहले ?
जो लगता आज बहुत बाहर
वह प्राणों तक छा जाता है;
जो दिखता आज बहुत ऊपर
वह तन-मन को सहलाता है;
सहसा जीवन की ऋतु बदली
रस की निर्धनता शरमाई
भरमाये पन्थी की सन्ध्या
फिर सपनों के वन में आई
कब गन्ध पवन ले आता है
कलिका के खिलने के पहले ?
कब किससे मन मिल जाता है
आँखों के मिलने के पहले ?
मैं जान गया था पहले ही
अपनी वाणी की वञ्चकता
मैंने सब दिन पहचानी थी
अपने भावों की रञ्चकता;
निर्णायक सहज सब था
सहमी-सहमी थी मन की तन्मयता
थे प्राण निपट एकाकी
दुख में डूबी थी दुख की मधुता;
कब गीत स्वयं रच जाता है
छाती के छिलने के पहले ?
कब किससे मन मिल जाता है
आँखों के मिलने के पहले ?

वह चाँद बहुत ही बड़ा उठा
चुक गया गगन का अँधियारा
है जगमग तारों की घाटी
शैलों पर छाया उजियारा;
पर मन की रीत निराली है
आकाश अनोखा जीवन का
अनजाने अनदेखे भी सब
सन्ताप बुझा जाता तन का;
कब कहाँ चाँदनी उग आती है
चाँद निकलने के पहले?
कब किससे मन मिल जाता है
आँखों के मिलने के पहले?
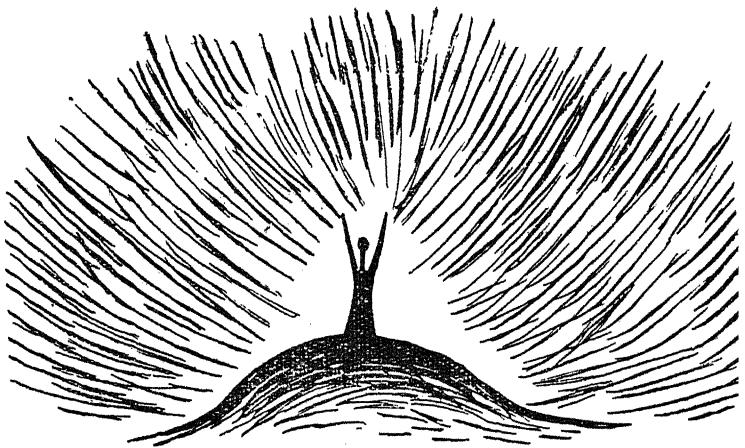
मैं मिली तुमसे

मैं मिली तुमसे कि जैसे धूप से छाया मिली हो
दीप से बाती मिली हो—प्राण से काया मिली हो

मैं अजन्मी थी मिला था जब नहीं वरदान तुमसे
मैं अबूझी ही पड़ी थी जब न थी पहचान तुमसे
मुझ अबोली अनकही को कह दिया तुमने जगतसे
रह गये ये प्राण मेरे मुग्ध भावाकुल विनतसे

एक तुम हो जो बहुत-सी बात कह जाते मिलनमें
एक मैं हूं कुछ न कह पाती भरे मनकी खिलनमें
सोच भी पाती न क्या सुनती रहा करती चकित-सी
तुम न समझोगे सहम मैं क्या किया करती भ्रमित-सी

मैं मिली तुमसे—सृजेतासे स्वयं माया मिली हो
मैं मिली तुमसे कि जैसे धूपसे छाया मिली हो

तुम न जाने क्यों मुझे इतनी अकम्पित मानते हो
किन्तु दुर्बल मन न मेरा तुम कभी पहचानते हो
जान भी सकते न तुम मुझ बंदिनीकी क्या विवशता
ये सती साधें हरे लेतीं प्रणयकी सब चपलता

चाहती रहती कि मेरी याद भी तुम तक न पहुंचे
मानता करता कि यह फरियाद भी तुमतक न पहुंचे
दूर रहती हूं मुझे रहने न देते प्राण मेरे
पर मिलनमें और भी रहते अचीन्हे दान मेरे

मैं मिली तुमसे कि जैसे मरुधरा मिलती गगनसे
रासकी वंशी अधरपर ज्यों मिली जाती पवनसे

नाच उठती शिशु सरीखी क्यों अधूरी अधबनी मैं
भय अभय दोनों मुझे लगते अनोखी अनमनी मैं
जो न पा सकती उसे छोड़ूँ भला किस भाँति पाकर
सिद्धि बननेसे भला था स्वप्न ही रहती जनमभर

श्वासका हर कम्प लगता है तुम्हारी याचना है
शील कहता पर बुलाना भी तुम्हें मुझको मना है
जन्म जन्मों के पटों को चीर तुम तक दौड़ आयी
कल्प-कल्पों के सुसञ्चित पुण्य फलमें मैं नहायी

मैं मिली तुमसे अकेलीको अकेली मैं अकेली
मैं मिली जैसे रुंधे आकाश से मिलती उजेली

डर मुझे लगता बड़ा खाली न हो पहचान का घट
दो मुझे आसक्ति में विश्राम—दो ऐसी न छुटपट
जानकर अनजान बनती मैं अनींदी की रटन-सी
जागरण की साँस भी लगती मुझे कैसी कटन-सी

अध जगी-सी भैरवी मैं स्वर न भर पाती तुम्हारे
नित नये आनन्द से बजती तुम्हारे ही सहारे
तुम बने आराधना के चाँद तुमसे प्यार भी क्या
तुम मुझे अप्राप्य इतने हो करूँ शृंगार भी क्या

पा गयी तुमको अचिन्ही आस ज्यों विश्वास पाले
लाज रंजित साँझ जैसे भोर का सपना सजाले

जीवन नौका

तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे,
नौका लहरों से टकराये पाल न कभी झुकेंगे !

कुचल रहा मन के साहस को मेघों का घन गर्जन,
भरा ध्वंस के अँधियारे में भयकारी आवर्तन,
भँवरें उल्टी साँस ले रहीं घुटनभरी अकुलाकर,
सब प्रदीप्त नक्षत्र बुझ गये जैसे नभ में जलकर,
चली आ रहीं तम की छलनाएँ धीरज पीने को,
लगता है सचमुच लाले पड़ जायेंगे जीने को !

पर ऐसे में भी मेरे विश्वास न कभी चुकेंगे,
तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे !!

दिन भर रहा भटकता मेरा दिवास्वप्न आवारा,
सुनता रहा पुकारें तट की मन आशा का मारा !
कौन झेलता वेग प्रलय का यदि यह भाव न होती ।
जल के चढ़े तने तेवर की बातें किससे होतीं ?

कौन थपेड़े तूफानों को अपने गले लगाता,
बढ़कर कौन मरण की आशंका का धुँआ उड़ाता,
प्राण बचाने को ये दो गतिवान न कभी लुकेंगे
तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे !!

भले बदल जाता हो जीवन लेकिन कभी न मिटता,
प्रबल प्रभञ्जन में भी आगत का स्वर कभी न पिटता !
है परम्परा अमर ज्योति की रोज सबेरा आता
लेकर नई किरण की साँसें रोज उजेला लाता !

भयकम्पित पैरों से दुर्भागी बादल कट जाते,
अन्धकार-आहूत रात के प्रेत सभी छुँट जाते !
इस बीहड़ बढ़िया में दो पतवार न कभी रुकेंगे !
नौका लहरों से टकराये पाल न कभी झुकेंगे !!

ऊपर–नीचे गाढ़ा–गाढ़ा धुन्ध उठा भँवराता,
पाल प्रलय श्वासों से फूले जल रह-रह धुँधुआता !
काला रूप फटा पड़ता लहरों में नहीं समाता
बनी वर्तुलाकार प्रकृति उन्मत्त पवन उफनाता !

चूर हो गया चाँद दिशाएँ कट-कट कर रह जातीं
विप्लव के दर्पण बन कर ये फूट गईं धुँधलातीं
तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे !
नौका लहरों से टकराये पाल न कभी झुकेंगे !!

मुझे लग रहा यह सब है वरदान तुम्हारा ही तो !
इन झटकों में गुंजित है जयगान तुम्हारा ही तो !!

डूब गया यदि सुख का दिन तो उसे डूब जाने दो
आती है मरघट-सी कालीरात, चली आने दो !

यह संकट की घटा शक्ति का मान तुम्हारा ही तो
इस दुर्दिन में जाग्रत पन का मान तुम्हारा ही तो
ज्वाला में भी पूजा के अरमान न कभी फुँकेंगे,
तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे ;

नहीं चाहता हूं तुम दुस्तर नद का पार दिखा दो,
नहीं चाहता मेरे हारे मन को जीत सिखा दो !

मैंने तुमसे अब तक मंगलकवच न कोई माँगा
पल भर को भी कोई अनुनय-भाव न मन में जागा
उठे तुम्हारे शाप गरज कर जीवन में दल के दल
रहा मुझे प्रतिक्षण ही अपनी ही तन्मयता का संबल
मेरे वज्र-हृदय के ये संकल्प न कभी, ढुकेंगे
तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे !!

भरमाते हो नाव तुम्हीं अन्धड़ में, तूफानों में
तुम्हीं शक्ति भरते छाती में, स्वर भरते गानों में
ज्वार उठा जाते हो जीवन की तरंगमाला में
सौ-सौ जीभें फैलाये लहरें उठतीं ज्वाला में !

यह झंझा लोड़ित गर्जित मंझधार तुम्हारा ही तो
मेरे साहस का, गति का अम्बार तुम्हारा ही तो !
तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी रुकेंगे ।
नौका लहरों से टकराये पाल न कभी झुकेंगे !!

ओ मेरी जन्मान्तर साथिन !

रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो
ओ मेरी जन्मान्तर साथिन! बड़ी पुरानी प्यास हो

(१)

जनम-जनम की सखी! भला कैसे न तुम्हें पहचानता
बिछुड़ी-बिछुड़ी याद लिये मन कब से तुमको जानता
कितनी तृप्ति मिली थी तुमको पहली बार निहार कर
कैसी गूंज उठी थी अन्तर में तुमको मनुहार कर
तब से प्रतिक्षण यही लग रहा कितना तुम्हें पुकार लूँ
प्राणों की पूजा के पहले कितना तुम पर वार दूँ
दिल की हर धड़कन कहती तुम बड़ी पुरानी आस हो
रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो

(२)

ठौर-ठौर थक गया ढूंढ़ता तुमको पूरे देश में
ले अतृप्त तृष्णा फिरता था अपना ही अवशेष मैं
सब संवादी स्वर सोये थे असफलता की हार में
छूकर उन्हें जगाया तुमने एक नये संसार में
पाकर दरस तुम्हारा व्याकुल हुआ परस के ध्यान में
तुम आकर छा गईं युगों से खंडित मन में प्राण में
तुम युग-युग से पले चेतना के सपने की साँस हो
रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो

(३)

कहीं मिलेगा तुमसे बढ़कर सुन्दरता का देश क्या
हो सकता है तुमसे बढ़कर पावनता का वेश क्या
सोच नहीं सकता था जो मैं वह सब तुमसे कह गया
रातों-रात अमरता की भाषा बनकर मैं रह गया
जैसे प्रथम मेघ सावन का जलते मरु पर छा गया
अगणित मधुमासों का ज्यों हिल्लोल विजन फिर पा गया
दूर कहीं भी हो तुम मेरी आत्मा का अधिवास हो
रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो

(४)

मेरे पुण्यों की निर्धनता तुमको देख लजा गई
मेरे पापी तन की कजली कैसे तुमको भा गई
मेरी झूठी प्रीति तुम्हारी स्वीकृति कैसे पा सकी
मेरी दरकी चाह तुम्हारे मन में कम्प जगा सकी
मेरी तन्मयता की पूंजी कब की कितनी लुट गई
मेरे सब एकान्त समर्पण की निर्मलता छुट गई
तुमने मुझे उबारा पातक से—तुम पुण्य-प्रकाश हो
रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो

(५)

तुम न सुनोगी तो मैं किसे पुकारूँगा संसार में
तुम न रहोगी पास कहाँ देखूँगा सुख का द्वार मैं
तुम न छुओगी पाऊँगा कैसे गति का संचार मैं
तुम न भरोगी स्नेह जलूँगा कैसे तम के पार मैं
दूर-निकट की बात नहीं यह मन की अगम प्रतीति है
जनम-जनम से चलती आई यह पूजा की रीति है
इसी चिरन्तन पूजा का तुम घना-घना आश्वास हो
रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो

(६)

कब तक सह पाऊँगा मैं इस विह्वल सुख के स्वाद को
कब तक झेल सकूँगा भरमाये मन के उन्माद को
तुमको पाकर मैंने तीनों लोकों का सुख पा लिया
मुग्ध झुकी आँखों ने मेरे मन का भरम बता दिया
ओ री अन्तर्यामिनि ! तुमने यह क्या कैसा कर दिया
किस अनदेखे सागर से लाकर इतना रस भर दिया
बन जाता अद्वैत क्षणों में—तुम तो वह विश्वास हो
रोम-रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो
ओ मेरी जन्मान्तर साथिन ! बड़ी पुरानी प्यास हो ।

सावन-भादों—

पहिन लहरिया आज खड़ी होगी क्या उसी अटारीपर फिर
तुम मेंहदी-रंजित हथेलियोंपर रख अपना चिन्ताकुल सिर
जीवनका समस्त उजड़ापन होगा थके हृदयपर छाया
मटियारी पावस-संध्याका धुँधलापन ज्यों सिमट समाया
आती होंगी याद तुम्हें भी वे अतीतमें डूबी बातें
जिनमें कट जाती थीं बिन सोये कितनी बरसाती रातें
बाहर फूटा करते थे नभमें असंख्य झरनोंसे बादल
भीतर डेरा करता था मैं अपलक श्रान्त दृगोंका काजल
आज थके प्राणोंमें लेकर याद उन्हीं घड़ियोंकी रानी
तुम चुपचाप खड़ी होगी उफनाता होगा मन अभिमानी
दूर खेतसे सुन चरवाहेकी वंशीका मर्म-मधुर स्वर
आता होगा झिल्ली झनकारोंपर जो प्रतिक्षण लहराकर
क्या न नमीसे भारी हो उठती होगी मुस्कान तुम्हारी
एक चमक-सी आती गहरी कर जो मानसकी अँधियारी
उस सतरंगी चुनरीमें भरकर खोये साथीकी ममता
आज खड़ी होगी तुम जैसे बेचैनीका स्रोत न थमता
भाल चूमते होंगे पुरवैयाके झोंके आ जंगलसे
सिंचित करते होंगे तृष्णाकी बाती सिहरनके जलसे
क्रन्दन करता है मेरा तन-मन अपने ही चीत्कारोंसे घिर
पहिन लहरिया आज खड़ी होगी क्या उसी अटारीपर फिर
तुम मेंहदी-रंजित हथेलियोंपर रख अपना चिन्ताकुल सिर

दीप जलमें बह चला

दीप जलमें बह चला
कूलमें वन्दी विरहकी ज्योतिका आभास ले
एक भीगी वेदनाका स्वप्न ले उल्लास ले
दीप जलमें बह चला
साँझ होते ही नमित मुख आगई वह बालिका
मर्म-शंकित वक्ष-कंपित अधखिली शेफालिका
दीप जलमें बह चला
नींदकी माती निशा-सी किरण आँचल में छिपा
एक कणमें मरण-जीवनकी मिलन-ज्वाला दिया
दीप जलमें बह चला
दूर ऊपर व्योममें मुसका उठी नव तारिका
ले चली सरि गीत जिसका तृषित वह नीहारका
दीप जलमें बह चला
स्वर तरंगोंके लिये जाते कहाँ अज्ञातमें
ज्योतिमें निज ज्योति भरने दीप झंझावातमें
दीप जलमें बह चला
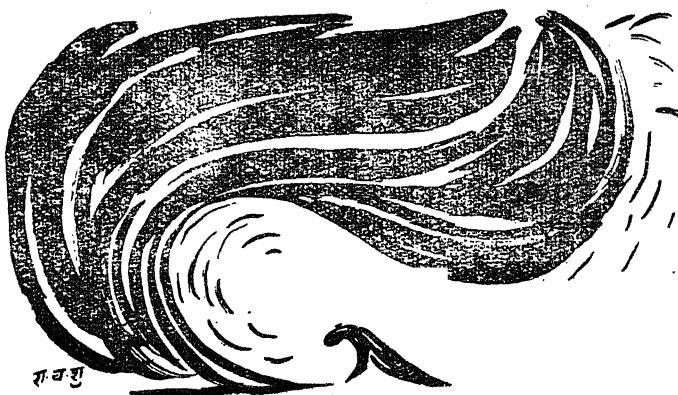
करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं !

ना होती नाराज करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं
मिलते ही तुम लेते मुझको घेर स्वप्न के साये में
भर देते हो कैसी बिजली मेरे मन भरमाये में
प्राण मिला देते प्राणों से मेरी आँखें मींच कर
तन में लौ-सी लहका देते मन मदिरा से सींच कर
दुपहर जाती बीत करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं
ना होती नाराज करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं

घण्टों दिल धड़का करता है मेरा इसके बाद भी
तुम आते हो और तुम्हारी आती प्रति क्षण याद भी
थाह न पाती इस उलझन से भूल न पाती स्वाद भी
इस बेचैनी के मौसम की हो किससे फरियाद भी
है कैसा यह खेल करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं
ना होती नाराज करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं

जाने मन कैसा करता खिंचता है तट की ओर रे
आकुल पत्तों की वीणा मर्मर का ओर न छोर रे
रंगभरी रवि किरणें फुलझड़ियों सी पड़तीं छूट रे
देते बेणी खोल चुटीले मेरे जाते टूट रे
गूँथ लटों में फूल करेंगे हम फिर अब शृंगार नहीं
ना होती नाराज करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं

मैं शरमाती अपने गालों की लाली में डूबती
मैं बल देती अपने आँचल को दाँतों से दूबती
कोई देख न ले फिर कोई देख न ले लो मैं चली
मेरे तन में कम्प कपूरी तुम भर देते हो छली
तुमको लाज न लगती तुमको होता तनिक विचार नहीं
ना होती नाराज करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं

गन्ध कनक चम्पा की लेकर चली उनींदी बात फिर
नींद नहीं मेरी आँखों में मन सहता आघात फिर
पवन कँपा देता है रह रह नयी नाव को तीर पर
चौंक रहो हैं तन की साँसें मन में उठती पीर पर
है ऐसा क्षण कौन कि उठते तुमको प्राण पुकार नहीं
ना होती नाराज़ करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं

नित आयेंगे गागर भरने इसी घाट की राह पर
नैन जुड़ा लेंगे बातें कर नहीं करेंगे चाह पर
यदि छलकेगी व्यथा दृगों से चल देंगे मुँह फेर कर
चल देती है लहर किनारे से ज्यों बाहें फेर कर
भले पहुंच पाती फिर तट तक उसकी विकल पुकार नहीं
ना होती नाराज़ करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं
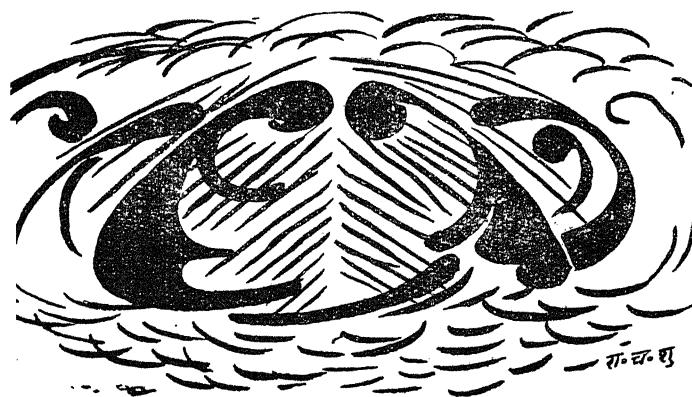
यह फागुन की रात

यह फागुन की रात और मैं विकल पड़ा मन मारे।
मेरे गीत बन गये रोदन, हँसी व्यथा का पानी,
तुमसे बिछुड़ बन गया मैं अपनी ही करुण कहानी,
मेरे बुझे हृदय पर चौमुख याद तुम्हारी आती,
मन के मुंदे धुंधलके में जो सिर धुनती मंडराती,
तड़प सिसकता है अधजला अधमरा ज्यों परवाना,
शेष जिसे अब बुझी शमा पर है केवल मंडराना।
अरे तुम्हारी याद तृषित मन मेरा,
है खग का कितना सुनसान बसेरा!
बाहर बरस रही स्वप्नों की शोभा नभ से झरझर,
जैसे सुषमा के मुकुलों का फूट पड़ा रस भू पर,
भरा विरह का सिन्धु, बीच में,
चन्द्र ज्वाल सी दीप रही तुम उस तट,
मेरे प्राणों का कोकी तुम्हें पुकारे,
यह फागुन की रात और मैं विकल पड़ा मनमारे!

(२)

गुंथी पड़ी यौवन के शिखरों पर वसन्त की माया,
है सोहाग की रात धरा ने दुल्हिन का मन पाया,
डूबी जाती सृष्टि तरंगित कस्तूरी के मद में,
रूप तुम्हारे नव अङ्गों का बिम्बित सुधा जलद में,
तुमने भी साजी होगी ऐसी अंबियारी चोली,
मधु-गुम्फित होठों ने होगी नवल माधुरी घोली।
चमक रहा मन चम-चम चाँदी की बेला-सा,
होगा कबरी में नव कलियों का मेला-सा,
झरनों के मर्मर-सा आँखों का आकाश तुम्हारा,
जाग रहा होगा बस उसमें मेरी सुधि का तारा,

फैल न पाती
अधर रेख सिमटी सिमटी सी रह जाती,
छिपा रही मुख मधु बयार ओसों के घन में
किस विषाद के मारे
यह फागुन की रात और मैं विकल पड़ा मन मारे ;

(२)

किस पर कर दे रात मिलन का सुख-शृङ्गार निछावर
उड़-उड़ बहते सौरभ का मन रुके कहाँ शरमा कर,
तुम न दिखो तो किसकी राह निहारे पन्थ सजाये,
फूलों की रज-केशर किन चरणों से लिपट लजाये,
यह वसन्त त्योहार सभी का केवल एक न मेरा,
ऋतुओं की ऋतु ने भी अब खोया उल्लास न फेरा,
गुञ्जित पंख मधुप के आज कटे हैं,
कोकिल के स्वर जैसे आज फटे हैं,
किस सुन्दरता से प्रसिक्त हो मधु की आत्मा काँपे,
किन नयनों की कनक-कोर से रति की ज्योत्स्ना काँपे,
मुझे घेर कर अब न बरसते शोभा के घन,
इस तरसे-तरसे-से मरु की वीरानी में
शेष नहीं अब एक तृप्ति कण !
अपनी ही तृष्णा से अब ये प्राण सदा को हारे,
यह फागुन की रात और मैं विकल पड़ा मनमारे

बापू

जो पाप धराके धोते हैं दुनिया उनका लोहू पीती !
जो मरुको जीवन देते हैं दुनिया उनका बध कर जीती !
है बात बड़ी पामरताकी
है कथा मनुज की पशुता की ।
युग-युगके पुण्य-विधाताका नर कैसे प्राण हरण करता
जन-जनके सम्मतिदाताकी साँसोंकी गति कैसे हरता
है बड़ा पुराना रोना यह !
जो चीर मरणकी अँधियारी घर-घरमें सुधा-ज्योति भरता
जो हिंसा-घृणा और भयसे जन-जनके हृदय मुक्त करता,
जिसकी जीवनधारा प्रतिक्षण सपनोंमें सत्य कहा करती
मन्दिर-मन्दिरकी प्रतिमामें ईश्वरताको जाग्रत करती
मानव ही उसपर वार करे ?
नर ही उसका संहार करे ?
जिसके पुन्यों की छाँह तले करुणाकी बेलें लहरातीं
जीवनभर सबपर प्यार भरी थी जिसकी दृष्टि सदा जाती
जब-जब पथपर तम गहराया जब-जब प्रकाशका पंथ मुंदा
उस रवि-सारथिकी दीप्ति सदा किरणोंके दीप जला जाती
जड़ है अन्धा इतिहास मगर
यह नस्ल जिसे कहते मानव पशुओंसे रही गई बीती !
जो ताप जगतके पीते हैं दुनिया उनका लोहू पीती !
विश्वास नहीं होता सचमुच
ऐसा भी क्या होता है कुछ
जो प्यासी पृथ्वीमें ममताका सिन्धु बहाने आता है
जो आजादीकी गंगाको भूपर विमुक्त कर जाता है
जगकी शोषित मानवता जिसपर आस लगाये बैठी थी
दलितोंकी आर्तपुकारों पर जो घर-घर दौड़ा जाता है

मर उसका ही घातक होता !
कलतक जिसको पूजा
अपने हाथोंसे आज उसे खोता !
विश्वास नहीं होता सचमुच मानव इतना खूनी होता
साकार हुआ आदर्श
सत्य मानवका तन धर आया था
समता स्वतन्त्रताका जीवित
सन्देश धरापर छाया था
हमने न सुना हमने न गुना
केवल अपना ही स्वार्थ चुना
पहले उसकी हत्या की
फिर हम रोये अपना शीश धुना
देवत्व बधा जाता जगमें होती पापोंकी मनचीती !
जो ताप धराके धोते हैं दुनिया उनका लोहू पीती !

× × ×

यह राष्ट्रपिताका जन्म-दिवस !
यह विश्वपिताका जन्म-दिवस !
इस दिन किरणोंका कर्णधार जगका विष पीनेको आया
कल्याणमयी मानवताका वरदान गगन-भूपर छाया
घर-घरमें गड़े रक्तके घट सीताकी शक्ति बने जैसे
देखी विदेह कृषकोंने फिर विप्लवकी क्रान्तिमुखी काया
यह सृष्टिकारका जन्म-दिवस
यह राष्ट्र-प्राणका जन्म-दिवस
प्रतिवर्ष चला आनेवाला वह आज नहीं सुखकर उतना
यह जन्म दिवस उज्ज्वलताका इस बार मरण त्योहार बना
यह पर्व शहादतका जिसमें बलिकी बेदी पूजी जाती
उसमें उत्सवकी दीप्ति नहीं इसमें सुखका आधार मना
यह अमर ज्योतिका जन्म-दिवस
यह विश्व-ज्योतिका जन्म-दिवस
विश्वास नहीं होता सचमुच
यह महाप्राणका जन्म-दिवस

आने आनेको मृत्यु-दिवस
आने है महाप्रयाण दिवस
इस सुधिमें चेतनताकी गति लगती कितनी रीती-रीती !
जो पाप धराके धोते हैं दुनिया उनका लोहू पीती !

× × ×

ज्यों जन्म-मरण जंजालोंसे हैं परे चन्द्र-सूरज-तारे
थे उसी तरह बापू तममें किरणोंका उदयाचल धारे

हत्यारा समझा मार दिया
लो मैंने उसका नाश किया
कैसा कृतघ्न मानव जिसने
अपने त्राताका अन्त किया !
जीवित देवालयको ढाकर
प्रतिमाको रजमें मिला दिया
वह मूरख नहीं समझ पाया
वह कायर नहीं समझ पाया
विश्वास नहीं मरता जगमें
विश्वास प्रकृति-सा अविनाशी
संकल्प नहीं मरता जगमें
अमरत्व-विभा उसकी दासी

मरती न क्षमाकी ज्योति कभी वह केवल फैला करती है
अधमोंकी दीप-शिखाओंमें वह नित नूतन लौ भरती है
बापूकी जीवन-सुधा फैलकर नभकी आँखोंमें छाई
बापूके जीवनकी श्रद्धा जगमें सागर-सी लहराई
घायल किस्मत मानवताकी इस सहज प्रेमसे तृप्त हुई
जिसको ज्वालायें घेरे थीं वह करुणा जलसे घहराई

अभिशप्त मनुजता शान्त हुई
संतप्त मनुजता शान्त हुई

सूखी नदियाँ जलपूर्ण हुईं नभने खोया धीरज पाया
फिर जैसे सदियोंका सूखा करुणाका सिन्धु उमड़ आया
नभकी छातीकी आग बुझी चाँदनी दाह खोकर सोई
धरतीकी छाती भरी-भरी ज्यों पाई उर्वरता खोई

भोगो किस रससे सृष्टि
विकल युग-युगकी तृष्णामें बीती !
जो पाप धराके धोते हैं
दुनिया उनका लोहू पीती !

× × ×

हम उस विराटके समयुगीन
हम उस महान्‌के समयुगीन
हमने उसके दर्शन पाये
माथेपर चरण धूलि लाये

उस प्रेमीकी उस मरमीकी करुणा छायाकी लाज हमें
उसकी परदुख-कातरताकी, देवत्व शिखाकी लाज हमें
उस अवतारीकी लाज हमें
उस तनधारीकी लाज हमें

प्रणवीरोंकी पूजा न कभी होती रोलीसे हारोंसे
होता न प्रवर्तकका पूजन निष्प्राण अर्घ्य उपहारोंसे
दीपोंका भी शृंगार नहीं उनकी अर्चा पूरी करता
वे तो बस पूजे जाते हैं आत्माको विकल पुकारोंसे

बनती विवेककी तन्मयता
उनकी पूजाका नीराजन
जब जलती कल्मषकी होली
तब होता है उनका वन्दन
मानवकी भीतिभरी लघुता
जैसे-जैसे ऊँचे उठती
होता वैसे-वैसे उनकी
उत्सर्ग-विभाका अभिनन्दन
हम इस पूजाके योग्य बनें
इस आराधनके योग्य बनें
विनती की इन अञ्जलियोंमें
मनकी स्वातीका सार भरें

जो मरुको जीवन देते हैं दुनिया उनका बध कर जीती !
जो पाप धराके धोते हैं दुनिया उनका लोहू पीती !

महाज्योति

नाच रहीं कितनी दूरीसे फिर आ-आकर
घेर-घेरकर
ये सुधिकी गौरवके सुखकी दीप्त तरंगें—
चीर युगोंकी अविरलताको
इतिहासोंकी अनुक्रम-गतिको
चली आ रहीं आज लहर-पर-लहर यादकी
सदियों-भरे प्रकाश तमिस्रामें हो-होकर
सदियोंके उत्थान-पतनके भीतर होकर
स्नेहाच्छन्न प्रसन्न शरदके नभमें होकर
बड़ी पुरानी स्मृतियाँ सपनों-सी मँडरातीं।
लगा रहा मेरी खोई-खोई आँखोंमें
जैसे कोई मोह-भरी तृष्णाका काजल
गूँज रही भूसे नभके छोरों तक फिर-फिर
विद्युत्से संचालित मेरे रोम-रोममें
कैसी बल भरनेवाली जयध्वनि अविनाशी!
व्याप्त हो रहा जीवनका कल्लोल चतुर्दिक
शोक नहीं, परिताप नहीं जैसे प्राणोंमें
इस सुधिकी गोरी-गोरी अवदात अँगुलियाँ
शीतल करतीं जैसे तप्त-ललाट धराका।
बड़ी दूरसे—युगों दूरसे यादें आतीं
वह पावनता और पूर्णताकी परम्परा
दूर-देशिनी यादोंमें उज्ज्वल हो जातीं।
श्यामल पुलकोंसे पल्लव-पल्लव छा जाता
तृण-तृण सिहर-सिहर अकुलाता
शुभ्र निवेदन सौरभका अर्घाञ्जलि लाता।
दिग्दिगन्तके मन आलोकित हो जग जाते।

लज्जामत गौरजके पथसे बाहर आकर
जैसे सान्ध्य सितारे नभमें ज्योति जगाते।
गत-अनुगतके पाण्डु वक्षपर मींड़ बाँधकर
युगों-युगों से शान्त पड़ी है महाज्योति वह
संस्कृतियोंके अध:पतनके कुहरेसे घिर।
आज उसीकी सुधिसे कविके प्राण भरे हैं
आज उसीकी छुविसे कवि के गान भरे हैं।

किस युगने देखी है ऐसी महासाधना
जीवित मर्यादाकी ऐसी पुरुषोत्तमता?
किस युगमें है सुनी भूमिने या नभने भी
मुक्तिदायिनी ऐसी मधुवाणी कल्याणी?
कहाँ मिलेगा महात्यागका महासिन्धु जो
महादेशके महातटोंको
याद नहीं है कबसे उर्वर करता आया?
जिसकी ओस-भरी आँखोंने सदा अमृतका स्रोत बहाया।
किस युगने देखा है ऐसा जीवनदाता
जिसे यादकर सेतुबन्धसे आज महासागर भी
सिर धुनता टकराता?।
किस युगने देखा अभिषेक-उषामें उठकर
फूलोंकी छाँहों-सी कोमल शय्या तजकर
सुख-मादकता-विभव-विलास-मधुरिमा तजकर
केवल आदर्शोंका सपना सत्य बनाने
श्रद्धामें विश्वास और संकल्प जगाने
केवल निष्ठामें शिवका सौन्दर्य सजाने
किस युगने देखा है
दो-दो राजकुमारोंको पथ-भिक्षुक बनते?
और कनक चम्पा-सी कोमल सुकुमारीको
हलके चाँद-भरे गोरे चरणोंसे थककर
क्षत-विक्षत तलवोंसे कंटक-भरे पंथोंपर
किस युगने देखा रमणीको पीड़ा सहते?
युग-युगकी अविजानित दूरीमें हो-होकर
आज उसी स्वर्णिम युगकी यादें घिर आतीं।

दृश्य बदलता है फिर आत्माकी आँखोंका
रुँधे-थके जीवनमें नव-आशा आती है
हारे उत्पीड़ित मानसमें किरणें नई उभर आती हैं।
नई स्फूर्तिकी विभा निखरती
नई चेतना तन-मन भरती।
अन्यायोंके गढ़ ढह जाते
अत्याचारी उबर न पाते
पापोंकी लंका जलती है, क्षार वासना होती।
धू-धूकर जलती पामरता
ध्वंस सदा होती कायरता
पशुता मिटती रोती।
हो जातीं प्रज्वलित अकल्पित ज्वालाएँ
कितनी भीषण दाह शिखाएँ
जिनसे कुन्दन-सी जीवनकी सुषमा कढ़ती
पुण्योंकी चमकीली प्रखर कनकता बढ़ती
युग-युगके आलोक-तिमिर सरिता-पर्वत कर पार
चीर-चीरकर महायुगोंके अनुवर्त्तनके ज्वार
चली आ रहीं इस विजयोत्सवकी सन्ध्यामें
शब्दातीत—रूपातीत—भावातीत स्वरोंमें
मेरी अक्षमता परवशता को बल देती
मनसे आराधक तन्मयता का कर लेती
बड़े पुराने बड़े पुराने युगकी यादें!
फैली हैं चाँदनी सरीखी जिनकी बाँहें
मुझे कसे लेतीं अपने व्याकुल घेरेमें।
सोच रहा मैं भाव-स्निग्ध रूपाकुल मनसे
उस विराटकी वर्षों-व्यापी गहन वेदनासे ही
मानवता के सागरके मन्थनके इस विषसे ही
नीला यह आकाश हो गया
पीला तारक-हास हो गया
मधुऋतुके आनन्दोच्छ्वासोंमें वियोगका दाह सो गया!

गाँधीजी !

गीत तुम्हारे गाते गाते हम तुमको ही भूल गये ।

तुमने जीवन को पहचाना हम न तुम्हें पहचान सके,
तुमने मर कर दुनिया जीती हम कब तुमको जान सके ।
जाती हैं सब ओर तुम्हारी किरणें पर हम भरमाये,
देव तुम्हारे पुण्यों को हम अब तक खोज नहीं पाये ।
याद हमें जयनाद तुम्हारा पर हम तुमको भूल गये,
गीत तुम्हारे गाते गाते हम तुमको ही भूल गये ।

आज तुम्हारे आदर्शों की छाया भी अवशेष नहीं,
भरी नदी में जैसे गति की धड़कन का आवेश नहीं ।
मरणशील इतिहास बन गई आज तुम्हारी क़ुरबानी,
क्षण भर को भी हमने तुम जैसे की लाज नहीं मानी ।
शपथ तुम्हारी खाते खाते हम तुमको ही भूल गये,
गीत तुम्हारे गाते गाते हम तुमको ही भूल गये ।

मन्द नहीं होते वंदन के स्वर तुम तो भगवान बने,
हम पर-पीड़न में, शोषण में और बड़े प्रणवान बने ।
पूजा का पाषाण बना कर हमने तुमको रख छोड़ा,
मंदिर में अगणित पत्थर थे एक अधिक उनमें जोड़ा ।
मंदिर में ठहराया तुमको हम पापों में झूल गये,
गीत तुम्हारे गाते गाते हम तुमको ही भूल गये ।

मन के शैल-शिखर को तुमने सदा ज्योति से नहलाया,
जीवन के कुंजों पर तुमने की शीतलता की छाया ।
सबके सुख के सार्थवाह तुम शान्ति-साधना के साधक,
तुम्हें बिताकर बने अनैतिकता के हैं हम आराधक ।
साथ तुम्हारे सत्य अहिंसा के दो जीवन-मूल गये,
गीत तुम्हारे गाते गाते हम तुमको ही भूल गये ।

वर्त्तमान

मैं अपनी जीवन-वीणाके कोमल तारोंको तोड़ चुका !
बिन छेड़े जिनके मीठे स्वर कलिका के सौरभ से निकले,
जिनकी रागिनियों में बहते सपने बनकर साकार चले;
जिनकी मीड़ों से मादकता चन्दा की किरणों-सी फूटी,
सौन्दर्यमयी करुणाके दीपक सुनकर जिनका नाद जले।
मैं संघर्षोंकी कटुतामें सब छलनाके घट फोड़ चुका !
मैं अपने गीतोंकी माला के छिन्न-भिन्न कर चुका तार !
मैंने वे परिमल के प्रतीक पाटल सुकुमार मसल डाले,
जिनके सुवास की मदिरा में अरमान पड़े थे मतवाले
जिनकी पंखड़ियोंमें चित्रित थी मेरे यौवनकी क्रीड़ा,
मेरी मुकुलित मंजरियोंको पड़ गए प्राणके ही लाले !
मैंने गीतोंकी मालाका खंडित कर डाला सब सिंगार !
मेरी कल्पना-हंसिनीके झुलसे पंखोंकी मत उड़ान !
कविकी कुमारिका चिन्ता अब करती न गगनके मेघ पार;
युगकी कठोर ज्वालाओंने ली सोख रूप-रस-गन्ध-धार,
मोती के मेघागत कुंजोंमें बीते दिन, बीती रातें,
छविकी तुषार-रंजित झीलोंमें बीत चुके कितने विहार !
कम समय, बहुत कम समय, क्रांतिका महालक्ष्य कितना महान !

मेरी रागिनी, मुझे भूल जा

मेरी रागिनी, मुझे भूल जा!
मुझे भूल जा, सपनों भरी,
ओ सुहागिनी, मुझे भूल जा!
मेरी रागिनी, मुझे भूल जा!

तेरे लाल होंठ गुलाल-से,
जो प्रकाश में सुरा घोलते;
तेरे कंप बीन की झांझ-से,
जिन्हें सुन सितारे भी बोलते।
तेरे स्वर शमीम-से—कहना क्या,
जो पँखुरियाँ रूप की खोलते।
जो जवानी को भी जवान कर
दिल प्रेम का हैं टटोलते,
मुझे भूल जा, ओ स्वरों की
कामिनी रागिनी, मुझे भूल जा!

न रुकी अटकती निगाह की
शरमाई पुतली मुझे दिखा,
न तू गर्म पलकों की छाँह से
तरसाई बिजली मुझे दिखा;
न अतृप्ति—परिधान में कसे
नए गात का कँपना दिखा,
न खिले सुमन के उभार में
झँपे रूप का तपना दिखा,
मुझे भूल जा मेरी संगिनी,
मेरी साथिनी, मुझे भूल जा!

तू विलीन हो आज शून्य में
जा सिंगार चंदा का कर वहां,
वहीं गूंथ वेणी निशीथ की,
गए स्वप्न-हार बिखर जहां,
वहां चांदनी की तू मांग भर,
औ' दृगों में आंजन सार दे,
तू सुबक न, तू न छुलक तनिक,
मुझे आंसुओं से उबार दे;
तूँ सँभाल आंचल ढल चली,
मेरी मानिनी, मुझे भूल जा!
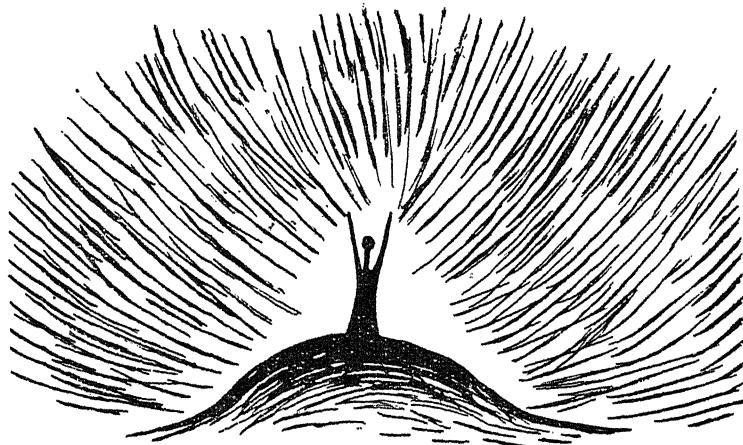
मांझी

माँझी ! जल का छोर न आता
बीत गया पूरा दिन चलते किन्तु न ओझल कूल लखाता
माँझी ! जल का छोर न आता
भरी नदी बरसाती धारा
घन गर्जन अम्बर अँधियारा
काली काली मेघ घटायें आ पहुँची रजनी अज्ञाता
माँझी ! जल का छोर न आता
नभ अशान्त गाढ़ी तम छाया
मन वियोगिनी का भर आया
प्राणों की आशा बादल पर खींच रही है मौन सुजाता
माँझी ! जल का छोर न आता
एक अकेला उत्कंठित जल पक्षी कब से उड़ता आता
ये लहरें ऊपर से शीतल
दाह भरा इनका अन्तस्तल
तट न मिले पर अब तो इनकी ज्वाला से संबंध न जाता
माँझी ! जल का छोर न आता ।

बापू
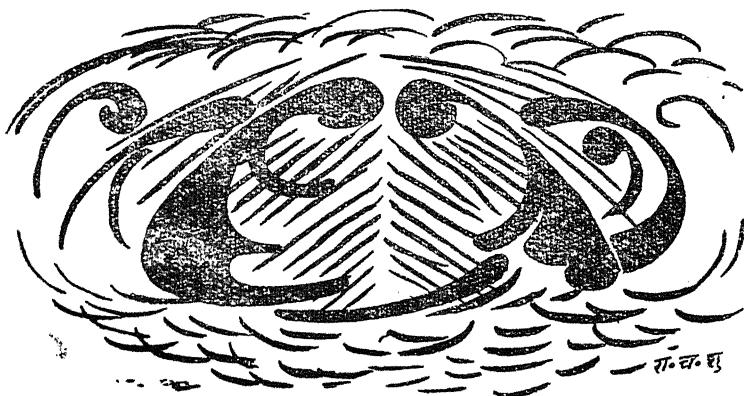
हर सदियों का दासत्व, देश के सिर का पर्वतभार हरा;
ज्वाला-जर्जर जीवन में तुमने अमृत-मेघ-भांडार भरा।

तुम सत्य-सिंधु, जिसकी लहरों ने किया अमरताका प्रसार;
तुम महादेव, जनगंगा को जिसने मस्तक पर लिया धार।
तुम मानवता के शुभ मुहूर्त, निर्मलता को निर्मल करते;
करते पवित्रता को पवित्र; आशीषों के निर्झर झरते।
अवरुद्ध व्योम-पथ मुक्त हुआ, किरणों में स्वर के प्राण सजे;
सीमाएँ सीमाहीन हुईं, युग की वाणी के तार बजे।
उदयाचल नई ज्योति लेकर अभिनंदन को दौड़ा आया;
बलि की मुक्ताएँ ले, यौवन का पारावार उमड़ आया।

तुमने जनता को मुक्ति-समर में मस्तक देना सिखलाया;
ललनाओं ने सिंदूरों की होली का स्वधा-मंत्र पाया।
हे देव! मरी मिट्टी में तुमने नई चेतना चमकाई;
की ऐसी सात्विक क्रांति, न जिससे बड़ी कथाओं ने गाई।

ओ तुम अशेष के अभिमानी! ओ दिव्य स्वप्न के संधानी,
दासों के महाद्वीप में तुमने कैसी ज्वाला पहचानी,
साहस के बंद कपाट भस्म कर मन पर छा जानेवाली,
समिधा की अरुण तुला पर खंडित ग्रीवा तुलवानेवाली।

कब रुके देश के चरण, झुका कब विद्रोही मस्तक उभरा;
तूफानी गति से चढ़ा, न फिर संघर्ष-सिन्धु का जल उतरा!

प्रलय रात अँधियारी

प्रलय-रात अँधियारी !
घिरे बरसने को अनियंत्रित बादल परिवर्तन के
घनी रात अँधियारी ।
बरस रहे फिर-फिर घिरने को—नभ ढँकने को
काँप रही सदियों की कारा
गिरी युगों की पाषाणी प्राचीरें
तोड़ चुके बंदी जंजीरें ।
नभ में क्रंदन करते नील सितारे
भू के सब बिखरे स्वर मिल-मिल कर बढ़ चलते
मग में जलती बाधाओं के अगणित स्फुलिंग उभरते
बढ़ते चलते नव जीवन के वेग सँभलते
अंधकार में मग न सूझता
बढ़ा जा रहा धरती का स्वामी विरोध से भिड़ा जूझता
संघर्षों की बेला है यह प्रलय रात अँधियारी ।
चले जा रहे अपना ध्येय सँभाले
नये चरण की नयी प्रगति,
कभी दिशाओं का भ्रम होता
गहन सिन्धु बरसाती तम का मुक्ति-मार्ग को घेरे
रह-रह कर जल उठते संकल्पों सी चमकी बिजली,
क्षण भर को पथ आलोकित कर जाती
काँप रहे संतरी धराशायी कारा के
देख-देख मिट्टी में चेतन की विद्रोही ज्वाला
दमकेगी अब उषा विभा की
फूट-फूट लहरायेंगे किरणों के निर्झर
स्वतंत्रता की अरुणाई से लोहित दिनकर
नष्ट करेगा दिग्भ्रम मार्ग-मलिनता निशि की
पंथदान गति पा जायेगी

जो निरुपाय खड़े हैं जीवन में धँसने को
गगन शिखर पर चढ़ने को
उन सबके व्यक्तित्व उठेंगे और उठेंगे
संहारों के बीच रहे जो लिप्त निरंतर
सत्यानाशों में अब तक सर्वस्व लुटाकर
होंगे रचना-मग्न वही विद्रोही बागी
उगते सूरज की उज्ज्वल पथ-ज्योति
भरमाये जीवन में सृजन-चेतना की अवतारी
कुछ घड़ियों की प्रलय-रात अँधियारी।
विजयोन्मुख नूतन भविष्य के चरण चूमने
नव विधान के मंत्र पूजने
चली आ रही प्रलय-रात अँधियारी

नवयुगका दीप जलाये !

किसकी ज्वालामुखी प्रगतिने राकाकी जंजीरें काटीं
डूब रही लोहित किरणोंमें मरणशील तारोंकी घाटी
चीर चलीं अस्तंगत अन्धकारको किसकी तरुण शिखायें
एक महाज्वाला बन फूटीं किसकी बिजली-सी रेखायें
किस शोषणविहीन अनदेखी-सी समताका प्रबल तकाजा
उठा रहा घर-घरसे सदियोंकी हिंसाका रुका जनाजा
गूँज रही जनगणके कानोंमें जागृतिकी अरुण प्रभाती
उगती चेतनतामें विप्लवकी चिनगारी उड़ती आती
पेट काटकर भूखे तनने जो सपनोंका महल बनाया
उसे रौंदती और दहाती आती बढ़ी नाशकी छाया
मिटनेसे स्वतन्त्र आदर्शोंमें है नये जन्मका नारा
उमड़ रही संगीनोंके सिरहाने आजादीकी धारा
चली आ रही क्रान्ति पुजारिन-सी नवयुगका दीप जलाये
कौन प्रवर्तक है जो शोलोंके मौसममें आगे आये
दूर नहीं है दीख रहा जनसत्ताका मंदिर बलिदानी
जिसकी ईंट-ईंटके गारेमें लिपटीं असंख्य कुरबानी
कदम-कदम बलिदान चाहता पथकी धूल लहूकी प्यासी
बढ़ते ही आते हैं उसपर ये परिवर्तनके अभिलाषी
समय बहुत कम—बिलकुल कम लिखनी है नये जन्मकी पाटी
किसकी ज्वालामुखी प्रगतिने राकाकी जंजीरें काटीं
जलते मनके गीत जला जाता अम्बर जलती है माटी
डूब रही लोहित किरणोंमें मरणशील तारोंकी घाटी

सोचो तो यह था !

सोचा तो यह था प्रेम तुम्हारा अक्षय मधुतामय होगा
सोचा तो यह था रूप तुम्हारा गीतों का संचय होगा
ये सपने कभी न टूटेंगे
सुख के घट कभीं न फूटेंगे
अरमानों की अमराई को
दुर्दिन आकर क्यों लूटेंगे
उजड़े जीवन के मधुवन में यौवन का कीर सहृदय होगा
सोचा तो यह था अन्तहीन जीवन का प्रथम प्रणय होगा
गदराई हँसी—विलास नया
मन का आवर्तन केन्द्र नया
एकाकी सन्ध्या तारों-सी
आँखों का था निर्माल्य नया
इन नूतनता के स्रोतों का जीवन में कभी न क्षय होगा
सोचा तो यह था अन्तहीन रूपसि का स्नेहाश्रय होगा
कर रहे अंग थे सुरापान
था शिथिल चीर थे तृप्त प्राण
दिल की धड़कन की कोरों में
कर दिए कभी थे लाल कान
कब सोचा था व्रीड़ा के इन्द्रधनुष का फिर विक्रय होगा
सोचा तो यह था प्रेम तुम्हारा अक्षय मधुतामय होगा।

रानी दुर्गावती

उस दिन प्यारी मातृभूमि पर बैरी थे घिर आये,
रेवा के तट पर विपदा के बादल थे घहराये।
सचमुच लगने लगा तेज को निर्मल रहा अँधियारा,
कौंध रही बिजली को खा लेगा बादल मँटियारा।
बढ़े आरहे थे अन्यायी दल के दल मतवाले,
चली आरही थी परवशता नागिन जीभ निकाले!
राजमहल से निकल युद्ध की ओर बढ़ी ज्वाला-सी,
महाकाल की ग्रीवा की विस्फोटक जयमाला-सी!
ज्योति-दग्ध होगई दिशायें चमक उठा नभ सारा,
रवि-किरणों की दीप्ति दब गई शरमाया उजियारा
शुचिता-कोमलता-सुषमा ने सब दिन जिसे सँवारा
मूर्त हुई बलिवेदी उसमें विनत हुआ ध्रुव तारा।
रक्त-रंजिता धरा सहम कर देख रही थी प्रति पल,
स्वतंत्रता की देवी में संचित कितना होमानल।
आततायियों के दल काँपे काँप उठे सब जलथल,
महानाश से होड़ ले रही राजबधूटी घायल!
किया वीरता का उसने अभिषेक पुत्र की बलि से,
सज्जित किया मरण को अपने लोहू की अंजलि से।
उस दिन प्यारी मातृभूमि पर बैरी थे घिर आये,
रेवा के तट पर विपदा के बादल थे घहराये।
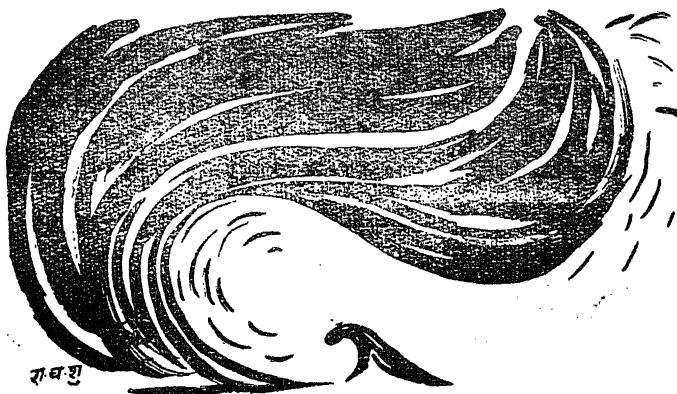
दलित उत्पीड़ित मनुज !

दलित उत्पीड़ित मनुज सुन ले जरा !
राजपथ की धूल में बिखरे पड़े ये गान
ओ निराशा से पराजित स्वप्नदर्शी सुन !
देख अपना ही बँटा खंडित हृदय
जोड़ सकता हूँ जिसे मैं
एक कर देंगे जिसे ये गीत मिट्टी के अजस्र अजेय
आ चला आ साथ इस गतिशील युग के !
है यही वह मार्ग तू अब जान ले
कर अडिग विश्वास अणु-अणु से इसे पहचान ले
है हमें चलना कि जिस पर
हमें ही क्यों
विश्व को—इतिहास को—भवितव्य की नव शक्तियों को !
है यही वह मार्ग जो जन-एकता की पारदर्शी ज्योति देता
देखता तू आग—भीषण यह दवाग
जल रही धरती युगों की संस्कृति की
कंठ सूखा—कर रही चीत्कार मानवता
जल रहा जिसका तृषित कण-कण
आग यह वैसी नहीं जो ध्वंस कर दे शोषणों को
चीर दे जो युग-युगों की कालिमा को—अनय शिखरों को
आग यह मनुष्यत्व को ही जो दहन करता
सभ्यता के प्राण हरती
आ ! चला आ ! भावना हो क्षुद्र या कि विराट
है बुझाना यह लपट—यह दाह का विभ्राट
यह निराशा और जड़ता झूठ है माया
सत्य केवल एक जीवन का—प्रबल आशा सतत दुर्भेद्य साहस
बँटा खंडित हृदय ही तेरा तुझे निर्बल बनाता

जोड़ दे तू खंड दोनों दूर थे जो आज तक
एक हों दो स्रोत बल-विश्वास के
सर्वनाशी आग यह जल से न—शोणित से बुझेगी
सुन अभागे ओ' अभाव ग्रसित मनुज सुन ले
देख अपना हो कटा खंडित हृदय ! ले देख !
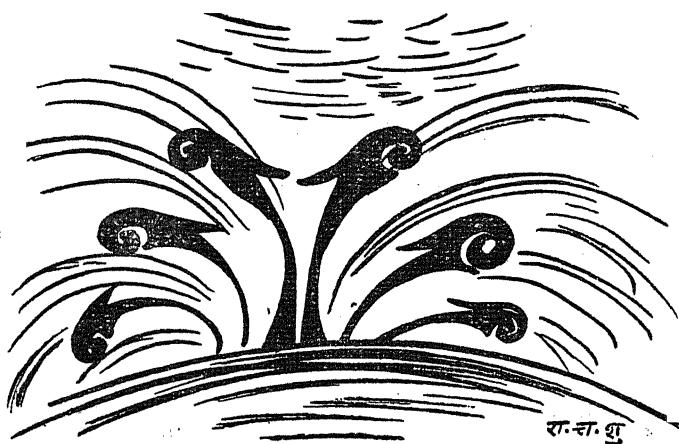
वेद ऋचायें थीं साँसों में !

वेद ऋचायें थीं सासों में, मुक्ति बसी थी मन में;
दृष्टि भरी थी वरदानों से मूर्त विभा थी मन में;
स्वर्ग विकल होता था बापू की आत्मा के दुख से;
राम नाम उज्ज्वल होता था कढ़ उस करुणा-मुख से;
जीवित था विश्वास और संकल्प हृदय कंपन में;
बिम्बित होती थी शिवता मुस्कानों के दर्पण में;
देह जली पर प्राणों का प्रह्लाद नहीं जल पाया;
कौन जला पाया हिमगिरि को, कौन बुझा शशि पाया;
चुका वक्ष का रक्त—अपरिमित प्रेम सिन्धु जीवन का,
देता रहा मोल जो युग-युग के अभिशप्त मरण का;
अधिदेवत्व क्षमा का मानव-ममता की ईश्वरता;
मूर्त हुई थी तापस तन में पर-सेवा-वत्सलता;
कौन सुनेगा अब पुकार पीड़ित जग के जन-जन की;
कौन हरेगा दाह-तृषा चेतनता के कण-कण की;
हाड़ चाम के पुतलों में बलि की बिजली का चालक;
त्यागाहुति के शोलों का अरुणाभ—पुण्य का पालक;
ऐसा था देवर्षि हमारा बापू राष्ट्र-विधाता;
ऐसा था वह अमर ज्योति का—अबुझ दीप्ति का दाता;
निर्वासित हो गई आरती राम नाम के जय की;
काँप रही हैं नीवें फिर श्रद्धा-निष्ठा की, तप की;
वेद-ऋचायें थीं सांसों में, सत्य-शिखा अन्तर में;
पदरज में संतत्व बसा था देवसृष्टि थी स्वर में;
रोम-रोम से चैत्य-चाँदनी का चन्दन झरता था;
रोता था प्रभु स्वयं कि जब बापू का मन भरता था !
वह सहिष्णुता का देवल, वह शान्ति स्नेह का सम्बल;
वह तन्मयता का स्वामी—उज्ज्वलता से अति उज्ज्वल
थी सदेह अवदात विमलता उस निष्कामी तन में
वेद ऋचायें थीं सासों में राम मूर्त था मन में !

तुलसीदास !

वंदन के स्वर मंद न होंगे, श्रद्धा-दीप जलेंगे ही !

(१)

आई कवि के महानिधन की ज्योतिर्दायिनी पुण्य घड़ी,
फिर कवि की पूजा में रत है गीत-गीत की कड़ी-कड़ी !

जिसने सपनों को ठुकराकर सत्य रचा—देवत्व रचा,
उसी प्रेरणा-दानी की जन-जन के मन में मूर्ति गड़ी !

पलभर को भी जिसकी पावन लोकसाधना नहीं रुकी,
सत्ता—सुख--वैभव के आगे कभी न जिसकी आँख झुकी,

कंठ-कंठ से उसकी जय के महाघोष निकलेंगे !
वंदन के स्वर मन्द न होंगे, श्रद्धादीप जलेंगे ही !

(२)

डूब रहा था देश, दमन को संगीनों का साया था,
संस्कृति घायल सिसक रही थी, धर्म चकित भरमाया था;

अंधकार के उस रौरव में तुम रवि के विश्वास बने,
कभी न कोई पहले इतनी ज्योति जगत् में लाया था !

तुम आए, जैसे कातरता को स्वर का वरदान मिला ;
तुम आए, जैसे दलितों को एक नया अभिमान मिला !

तुम-से महाप्रवर्तक के पथ पर प्राणवीर चलेंगे ही !
वंदन के स्वर मन्द न होंगे, श्रद्धादीप जलेंगे ही !

बापू !

रक्त-रंजित युग खड़ा निस्पंद तुमको सोचता !

दीप आँधी में जला पर शान्त नभ में बढ़ गया;
दासता में साथ था जो मुक्ति में क्यों कढ़ गया,
मूर्ति सूनी—देवता बलि-वेदिका पर चढ़ गया,
रक्त-रंजित युग खड़ा निस्पंद तुमको सोचता !

रो रहा खो सिन्धु जिसको बिन्दु वह कितना सजल,
तप अनोखा है—तपस्वी बन स्वयं आये अनल,
है चकित—देखी न युगने साधना ऐसी विमल,
रक्त-रंजित युग खड़ा निस्पंद तुमको सोचता !

है अचल विश्वास कितना है अडिग कितना हृदय
है अनश्वर जीव कितना है जयी कितना अभय,
भव्य है कितना मरण—संकल्प है कितना अजय,
रक्त-रंजित युग खड़ा निस्पंद तुमको सोचता !

है निरामय देह कितनी प्राण कितने ज्योतिधर,
है समर्पण सत्य कितना—मौन कितना है मुखर,
है शिखा यह ऊर्ध्व कितनी—भस्म कितनी है अमर,
रक्त-रंजित युग खड़ा निस्पंद तुमको सोचता !

उनको भूल न जाना

देश-प्रेम के ओ मतवालो, उनको भूल न जाना।

महाप्रलय की अग्नि-साध लेकर जो जग में आये,
विश्व-बली शासन के भय जिनके आगे मुरझाये।
चले गये जो शीश चढ़ा कर अर्घ्य लिये प्राणों का;
चलो मजारों पर हम उनके आज प्रदीप जलायें।
टूट गईं बंधन की कड़ियाँ-स्वतन्त्रता की बेला;
लगता है मन आज हमें कितना अवसन्न अकेला।
पन्थ चिरन्तन बलिदानों का विप्लव ने पहिचाना;
देश-प्रेम के ओ! मतवालो, उनको भूल न जाना।

जीत गये हम—जीता विद्रोही अभिमान हमारा;
प्राण-दान विक्षुब्ध तरंगों को मिल गया किनारा।
उदित हुआ रवि स्वतन्त्रता का व्योम उगलता जीवन;
'आजादी की आग अमर है' घोषित करता कण-कण!
कलियों के अधरों पर पलते रहे विलासी कायर;
उधर मृत्यु पैरों से बाँधे रहा जूझता यौवन।
उस शहीद यौवन की सुधि हम क्षण भर को न बिसारें;
उसके पग चिन्हों पर अपने मन के मोती वारें।
झंझा-तूफानों ने जिस दृढ़ता का लोहा माना;
देश-प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल न जाना।

जग करता आह्वान वारुणी का वे विष अपनाते;
दुनिया सुख की भीख माँगती वे सर्वस्व लुटाते।
रहती उनमें शक्ति धरा का वैभव ठुकराने की;
मिट्टी का लघु गात लिये वे लपटों में लहराते!
आततायियों को विचलित करतीं उनकी हुँकारें;
प्राण फूँकती चलतीं मुर्दों में उनकी ललकारें।
समय-सिन्धु ने इन बहते कूलों का शासन माना;
देश-प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल न जाना!

जिन्हें देखकर स्वयं नाश भय से कातर हो जाता;
जिनके आगे पशुता का सिर झुकता-बल दह जाता।
करता था उपहास प्रति चरण जिनका ढंग दमन का,
डरते थे तूफान-न जिनसे पशुबल होड़ लगता!
चलो करें हम उनकी ज्वाला का फिर से आवाहन;
उनकी सुधि की ज्योति जगायें करें उन्हीं का वंदन।
उन प्रणवीरों की बलि को जीवन-त्योहार बनाना;
देश-प्रेम के ओ दीवानो! उनको भूल न जाना।

इन मीनारों की नीवों में उनकी लाशें सोईं;
नेतृत्वों की जड़ें गयीं उनके लोहे से धोईं।
आजादी का भवन उठ रहा उनके उत्सर्गों पर;
जिसकी ईंट-ईंट में उनकी कुचली साधें खोईं।
आज चलो हम उनके घट पर सान्ध्य प्रदीप जलायें,
उनके खूँ से सिंचे पथों पर गलियों पर मँडरायें!
पूरा हुआ न अभी हमारी प्रतिहिंसा का बाना;
देश-प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल जाना।
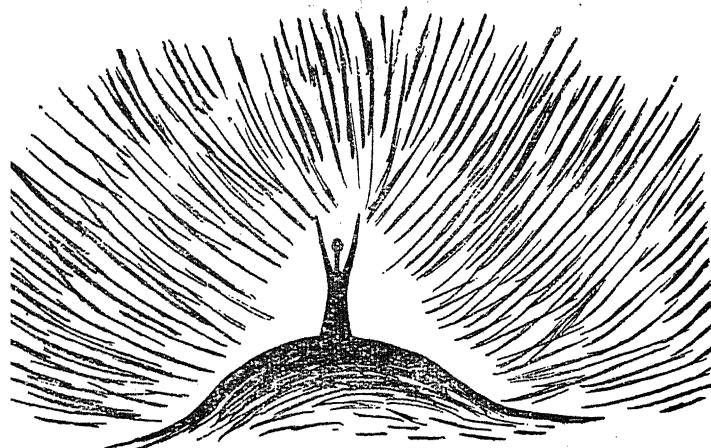
आलोक नहीं मरता है !

बुझ जाते हैं दीप, कभी आलोक नहीं मरता है !
क्यों न बुझे वह दीप रात भरका जो स्नेह सजाए,
नश्वर है वह दीप स्नेह के बल पर जो लहराए !

कब तक गूँथ सकेगा वह उज्ज्वल निमिषोंकी माला;
जिसे पराई ममता के बल ने दे दिया उजाला।
बँधती है कब लीक विभाकी बातीके बंधन में;
अग्नि-शिखा कब बँधकर रहती अंगारों के तन में !

दीपक बदते हैं—प्रकाश केवल फैला करता है !
बुझ जाते हैं दीप कभी आलोक नहीं मरता है !

स्नेहहीन होकर भी अनमिल अनचाहा मन दहता;
तृष्णा चुगती है चिनगारी प्राण-पपीहा सहता।
यह अविराम जलन—ज्वाला की सेज बिछी हो जैसे;
ऐसी प्यास उमड़ती मनमें युग-युग बुझे न जैसे।

है अविनश्वर यह प्रकाश—यह मुग्ध चाँदनी मनकी।
प्रथम विरहसे जलती आई दीप-शिखा जीवनकी।
स्नेह नहीं इसमें अभावकी सुधिका जल झरता है !
बुझ जाते हैं दीप कभी आलोक नहीं मरता है।

नहीं जलेगी

नहीं जलेगी ?
आग क्रान्ति की इन फूँकों से नहीं जलेगी !
भरे पड़े हैं दाग विलासों के चुम्बन के
होंठ तुम्हारे भीग गए हैं मन की रति से
सूख गया है बलिदानों का रक्त नसों में
नहीं जलेगी—विप्लव-ज्वाला नहीं जलेगी
नहीं तुम्हारी फूँकों में प्रेरणा गति की।
अत्याचारों के बूटों से दबी प्रजा की
जीवन-ज्वाला कब भड़केगी ?
इन सस्ते गीतों से ओ कवि !
मँगनी की मोटर पर जाकर
जिन्हें सुनाते कवि—सम्मेलन में तुम बढ़-बढ़
ख्वाब दिखा कर श्रोताओं को झोपड़ियों का
जना वेदना मन की—पौरुष सुला-सुला कर
गाल फुला कर दावा करते—मैंने युग का दीप जलाया
और प्रगति का पंथ सजाया
नभ की छाँह तले सोये प्रभात को बारम्बार बुलाया
झूठी है गर्वोक्ति तुम्हारी
तुम न राख का कण दे पाये
न्यस्त स्वार्थ—धन-सत्ता को तुम कोसा करते
किन्तु उन्हीं की चाटुकारिता में रत रहते !
तारीफों के लिये उन्हीं का मुँह भी जोहा करते !!
यह पाखंडी मनोवृत्ति अब नहीं चलेगी !

नकली फूँकों से समाज-परिवर्तन ज्वाला नहीं जलेगी !
जीवन का खिलवाड़ कर रहे कुछ टुकड़ों पर
मरी-मरी मुस्कान लिये पीले अधरों पर
लगा नये साहित्य, कला, संस्कृति का बिल्ला
इतराते अपनी बायस्कोपी कृतियों पर
देखा किये जिन्दगी भर सपना जागृति का
किन्तु आत्मा (जिसका भी अस्तित्व न माना)
रही सदा जड़ता में सोई !
नहीं जलेगी !
आग क्रान्ति की इन कृत्रिम फूँकों से नहीं जलेगी !
नहीं जलेगी !

पैर भले डगमग हों मेरे मन मंजिल के पास है।
डूबे डूबे प्राण किसी की याद नहीं सह पा रहे।
मेरी अगति-भावना मेरे शब्द नहीं कह पा रहे।
आज ढँकी आँखों से मेरे गीत नहीं बह पा रहे।
मेरे जल के स्रोत किसी के मरु में सूखे जा रहे।
कंपित हृदय, अकंपित मेरी आशा का उल्लास है।
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंजिल के पास है॥

होता व्यर्थ अधूरी पूजा में अर्पित उपहार कब।
बुझबुझ कर जलते दीपक का निष्फल ज्योति-प्रसार कब।
पूजा के पहले मुरझानेवाला फूल असार कब।
है संकल्प अडिग तो ठहरी दिल की विकल पुकार कब
इस असफलता में भी तेरा अभय सदा अविनाश है।
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंजिल के पास है॥

मेरी ही मादकता मुझको लिपट लिपट कर घेरती।
बिछुड़ गयी जो साध सदा को सजल दृष्टि से हेरती।
अभिमानी मन की उमड़न क्यों धार न अपनी फेरती।
जनम जनम की विफल वासना रह रह मुझको टेरती।

कुछ भी हो पर मुझे तुम्हारी करुणा पर विश्वास है ।
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंजिल के पास है ॥

जीवन के आलोक-तिमिर सब मंजिल को पहचानते ।
पै बेकाबू स्वप्न उसी को एक बसेरा मानते ।
मन के सारे कम्प-पुलक-आनंद उसे अनुमानते ।
वहाँ पहुँच कर राग और रस नहीं लौटना जानते ।
हो कितनी भी दूर मगर मिलता भू से आकाश है ।
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंजिल के पास है ॥

जन-जन के मन में

कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ
जिसमें जलकर राख बने सदियों की मिट्टी गुलामी
बोलो ! मैं कैसे सुलगाऊँ धूनी वही अनामी
मानवता की भूख-पराजय जिसमें धू-धू जलती
दलित बुभुक्षित की प्रतिहिंसा जिसके पीछे चलती
जो आपस की फूट जला आपस का भेद मिटाती
भूखों नंगों और हताशों को जो अमर बनाती
किस अनदेखे ज्वालागिरि से मैं वे लपटे लाऊँ
कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ

कैसे फूँकूँ कंठ-कंठ में मैं विप्लव की भेरी
मुझ में इतनी जलन मगर कितनी परवशता मेरी
कैसे उद्वेलित कर दूँ मैं हृदय-हृदय की बाती
मेरी शक्ति आज जैसे लौ को ही पकड़ न पाती
कैसे जागे रक्त-सिंधु में ज्वार युगों का सोया
कैसे मिले हड्डियों में जो वज्र युगों से खोया
मैं जलता आया पर बोलो कैसे तुम्हें जलाऊँ
कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ

कैसे सुलगाऊँ मैं वह जो आग युगों की प्यासी
है जिसके अंगारों का अभिसार सदा अविनाशी
बलिदानों के खूँ से सजती जिसकी सदा ललामी
होती जिसकी बारूदों के महलों बीच सलामी
जहाँ बदलते युग अपने पापों का लेखा देते
ज्वालामुखी इसी का लावा संचित कर रख लेते
ईंधन बहुत मिलेगा पर वह आग कहाँ से लाऊँ
कैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ

नूतन अभियान

तुम नूतन अभियानों से ये चिर जर्जर मार्ग बदल डालो !
क्यों जीर्ण पुरातन के चिथड़ों से ऐसा रोगी मोह तुम्हें,
क्यों नवयुग के कठोर जाग्रत सपनों से होता द्रोह तुम्हें,
तूफान नदी में आया है—ये नावें काम न आयेंगी,
ये घिसी युगों की पतवारें तिनकों-सी गिर बह जाएँगी,
नाविक, नौका, पतवार—बदलना होगा धारा का क्रम भी,
तुम नूतन अभियानों से ये अवरोधी मार्ग बदल डालो !

गंगा-यमुना का मेल नहीं—यह युद्ध पुरातन नूतन का;
फिर तुम तो वह आंधी हो जो उन्माद छिपाये यौवन का,
जो प्रतिद्वंद्वी आशाएँ ले जग की जड़ता खंडित करती,
जिसके आते प्रतिहिंसा भी कातर होती मिन्नत करती,
लाशों-सी लटक रही हैं बूढ़े वृक्षों की सूखी शाखें,
तुम उन निष्प्राण समूहों के चिर जर्जर मार्ग बदल डालो।

है आज तुम्हारे कंधों में गर्मी की एक फड़क दुर्दम,
जीवन की परवशता में भी कैसी चिन्ता, कैसा मातम,
वे दीप बदलने होंगे जिनकी ज्योति पुरानी हो आयी,
फूँको तो वे बिजलियां जीर्ण जिनमें निष्प्राण चमक छायी,
तुम आज बुढ़ापे की रग-रग में खून जवानी का भर दो,
तुम नूतन अभियानों से ये चिर जर्जर मार्ग बदल डालो।

तुम महाशक्ति की गति—आशा जो खेले भावी के पथ पर,
सूखे हाड़ों में महावज्र का नाद भरे जिसका प्रतिस्वर,
फिर आज तुम्हारी आँखों के आगे है समता का खाका,
जिसको अनगिनत शहीदों ने अपने बलिदानों से आँका,
लघुता के क्षुद्र धरातल में सोया संहारक बल लेकर,
तुम नूतन अभियानों से ये अवरोधी मार्ग बदल डालो।

गाँधीजी के निधन के बाद प्रथम स्वाधीनता-दिवस

आज राष्ट्र के महापर्व का सिंहासन है खाली !

यह कैसा त्योहार कि लगता इतना सूना-सूना
कैसा यह मुहूर्त जिसमें दुख-दर्द हो रहा दूना
झुका जा रहा क्षुब्ध तिरंगा झंडा आज हमारा
रुद्ध हो रहा कोटि-कोटि कंठों में जय का नारा
घूम रहे खोये-खोये से तरुण वीर बलिदानी
शिथिल करों से डोर ध्वजा की खींच रहे सेनानी

देख न पड़ती कहीं विजय गौरव की जीवित लाली
आज राष्ट्र के महापर्व का सिंहासन है खाली !

अभी उठा था देश दासता के सागर से ऊपर
अभी-अभी गूँजे थे पर्वत शिखरों पर सुख के स्वर
कितनी कठिन यातना, निर्वासन, अपमान सहनकर
राह मौत की देख-देख फाँसी सेलों में गाँज कर
उसके आवाहन पर यौवन ने सर्वस्व लुटाया
कितना रक्त बहा तब यह आजादी का दिन आया

किंतु लग रहीं आज सूर्य की किरणें कितनी काली
आज राष्ट्र के महापर्व का सिंहासन है खाली !

आज तुम्हारा सच्चा तर्पण होगा राष्ट्र-विधाता
आज तुम्हारा श्राद्ध-दिवस है ओ नवयुग निर्माता !
इतिहासों की रज में खोये हिंसक अत्याचारी
काल गर्भ में लीन हो गये कितने सत्ता-धारी
देव ! तुम्हारी सुधि के घट पर युग-युग सत्य पलेंगे
महादेश के प्राण दीप बनकर चिरकाल जलेंगे
किन्तु आज तो कसक रही पीड़ा अंगारों वाली
आज राष्ट्र के महापर्व का सिंहासन है खाली !

अलविदा

अलविदा ! नैराश्य की धूमिल प्रणाली ।
पृथुल जंघा पर समय का शीष रक्खे
युगों से लेती प्रणत शव-साधना-सी
अलविदा !

ओ सृष्टि के नंगे अधूरे गीत की अवसादिनी ।
एकाकिनी चिर शून्य संसृति क्षितिज की एकाकिनी
वेदना के अमित पुंजीभूत भार
युग युगों की तमभयी वीभत्स हार
आत्म-क्षय की अकर्मण्य विधवा पुकार
निस्पृहा की भ्रान्ति—पीली भ्रान्ति
अलविदा !

ओ स्वप्न घन की रुग्ण आत्म-प्रपूर्ति
रागहीन विरागहीन समत्व की छलना
अपस्मारी चेतना के धुन्ध
नीली बैंगनी औ आस्मानी धुन्ध
जिसमें डूबती आई कला, संस्कृति, सरसता
जो मरण की छांह सी चहुं ओर फैली
जो प्रगति की शक्तियों की तलहटी में
बुद्धि-बौनी अहंकृति बन आज छायी
अलविदा ओ !

अश्रु-मेघों में छलकते मौनता के सिन्धु
सम्मिलित जीवन-रसा की वासना की श[illegible]
ऐकान्तिक अहम् की विकृत अनुकृति
शरमीली निशा के बुझे मन की कुहा
लज्जा-कुंठिता वन्ध्या दिशा की सृजन-जड़ता
बोलना सीखी न जो
अभिव्यक्ति जिसकी मर्म में ही घुट मरी
अभिव्यंजना की विकलता जागी न जिसमें
आत्म पीड़न की अगति में जो ढँगी ही रह गई
अलविदा अब ज़िन्दगी भर को विदा !

चिता के धूम्र-सी निस्तेज अंधी
प्राण पर छाई घटा ओ गफ़लतों की
वर्ण-संस्कारों की घनी चिरवृद्ध ममता
मिथ्या आदर्शों की नकली द्विधा—अलविदा !
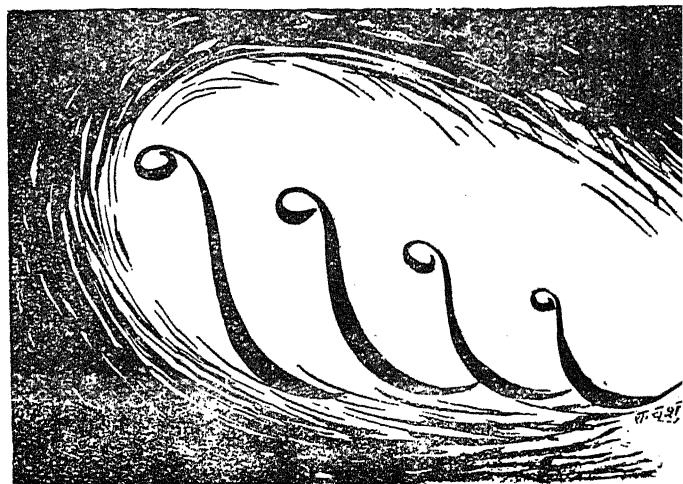
नवयुग की दीवारें

परवशता के अंगारों में तप-तप कर
जूझ-जूझ कर बाधाओं की चट्टानों से
कितनी कठिन आपदाओं से, अवरोधों से,
हमने निर्मित कीं ये नवयुग की दीवारें
धमकी दी नभ ने तब जैसे फट पड़ने की
जीर्ण समाजी धरती ने भूकम्प उठाये
कितने क्षणिक धराशाई तूफ़ान मचाये
किन्तु रुका कब दीपक राग नई ज्वाला का
कब रुकता सम्मिलित चेतना का विश्वासी
परिवर्तन का चिर विश्वासी
चीर विरोधों की छाती को उठी कौंध कर
नवयुग की ये रुधिर-रंजिता दृढ दीवारें
रूप मिला साँग्रमिक तृषा को
उष्ण रक्त में तैर-तैर कर यौवन उभरा
चला छलांगें भरे शवों पर परम-प्रियों के
डूबा उभरा क्षुब्ध तरंगों पर लहराया
बलिदानों के चूने गारे सिमेंट ले
हमने निर्मित की हैं नवयुग की दीवारें
ऊपर उठती जातीं—कितनी बढ़ती जातीं
मानवता की समता का नव शशि छूने को
इस निर्लज्जा दुनिया की तक़दीर बदलने
चरण-चिन्ह पशुता के थोड़े और बचे हैं

(जो दबकर मर चुकी पुरातन के मलवे में)
उसे मिटा देंगे श्रमसत्ता के निर्माता
फिर इन दीवारों पर चित्रों में रँग देंगे
सब के सुख को जीवन की लय भरी उमंगें
प्राकृतिक मानवी छवियों की परिणति महान्
टूटेंगे शोषण की मकड़ी के जाले
जिनमें अकुलाता वर्गबद्ध मानव-समाज
हमने सपना सत्य बनाया
और कुरूप सत्य जीवन का अपने-सा अति भव्य बनाया
इन नवयुग की प्रसरणशीला दीवारों पर
आंकेंगे हम चित्र अंकुरित अरुणाई के
हाड़-माँस के—संघर्षों के, बलिदानों के
नये जगत के आह्वानों के !